ब्र० कृष्ण दत्त जी द्वारा

सुषुप्ति-अवस्था

में

वैदिक - प्रवचन



मू० १) रु०

प्रकाशक—

वैदिक अनुसन्धान समिति, विनयनगर, नई दिल्ली

श्री ब्र० कृष्णदत्त जी का हस्तलेख

२०-१-६५

श्री मान शास्त्री जी नमस्ते
प्रतिक्रमण सतमता गासत मे आप
के याहां ६-२-६५ को आऊंगा
यज्ञ के लीये १०० कीलो

* ओ३म् *

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी द्वारा

विशेष अवस्था में

वैदिक-प्रवचन

प्रकाशक:--
वैदिक अनुसन्धान समिति,
९४-सरोजिनी मार्केट, विनय नगर,
नई दिल्ली-३

प्रकाशकः—
वैदिक अनुसंधान समिति,
६४-सरोजिनी मार्केट, विनयनगर,
नई दिल्ली-३

पुस्तक मिलने का पताः—

१. मोहन लाल जी मोत्याल,
मोत्याल भवन, पुरानी मण्डी, जम्मू-कशमीर।

२. मोतीराम वेदव्रत खन्ना,
नजदीक मस्जिद, ऊधमपुर, जम्मू।

३. गोविन्दराम हासानन्द,
नई सड़क, दिल्ली।

४. देहाती पुस्तक भण्डार,
चावड़ी बाजार, दिल्ली।

५. सार्वदेशिक प्रेस,
पाटौदी हाऊस, दरियागंज, दिल्ली।

६. वैदिक अनुसन्धान समिति,
६४-सरोजनी मार्केट विनयनगर, नई दिल्ली।

द्वितीयवार ३०००

मूल्य १)

मुद्रकः—
सार्वदेशिक प्रेस,
दरियागंज, दिल्ली-७

ओ३म्

कृतज्ञता-प्रकाशन

ब्र० कृष्णदत्त जी के सम्बन्ध में जो प्रवचन एवं अनुसन्धान कार्य हो रहा है उसमें अनेक सज्जनों ने प्रवचन अनुसन्धान समिति को धन, जन, विचार तथा परिश्रम से सहायता प्रदान की है, जिनका हृदय से धन्यवाद करता हूँ—साथ ही विशेष रूप से श्री आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री, श्री पं० ज्ञानेश्वर जी शास्त्री प्रभाकर जिन्होंने बहुत परिश्रम कर इस पुस्तक का सम्पादन किया है तथा श्री अमृतलाल जी 'वशी' जिन्होंने धन द्वारा समिति की सहायता की है धन्यवाद के पात्र हैं। इस समिति के प्रधान, महामन्त्री एवं सदस्य गण जो दिन-रात परिश्रम कर इस कार्य को सफल बनाने में संलग्न हैं और आर्यसमाज विनयनगर, लोधी रोड, लाजपत नगर, जंगपुरा आदि अनेक समाजों के अधिकारी एवं कार्यकर्ता समिति को हर प्रकार का सहयोग प्रदान कर रहे हैं—सब ही धन्यवाद के पात्र हैं।

विनीतः—

रोशनलाल गुप्त

मन्त्री

प्रवचन अनुसन्धान समिति, नई दिल्ली

श्री कृष्णजन्माष्टमी

२०१६ वि०

आर्य जगत् में संस्कृत साहित्य के महापण्डित
व्याकरण—वेदान्त—साहित्य—आयुर्वेदाचार्य
डाक्टर श्री हरिदत्त जी शास्त्री
पञ्चदशतीर्थ एम० ए० पी० एच० डी०
संस्कृत विभागाध्यक्ष डी० ए० वी०
कालेज कानपुर की
ब्र० कृष्णदत्त के सम्बन्ध में

सम्मति

—:०:—:०:—

ब्रह्मचारी कृष्णदत्तः,
प्राज्ञ, सन्नपि प्रज्ञवत्।
यानि प्रवचनान्याख्यत्,
तानि विस्मापकानि मे ॥१॥
नह्यत्र कुहना काचित्,
न दम्भः किन्तु पूर्वजाः।
दशां विशेषे संस्कारा,
उद्बुद्ध्यन्ते मतं मम ॥२॥

भावार्थ—अशिक्षित होते हुए भी ब्रह्मचारी जी जो प्रवचन करते हैं वह विद्वत्तापूर्ण आश्चर्यजनक हैं। इसमें न कोई दम्भ है और न पाखण्ड। विशेष स्थिति में पूर्व जन्म के संस्कार जागृत हो जाते हैं ऐसी मेरी सम्मति है।

* ओ३म् *

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के जीवन

का

संक्षिप्त परिचय

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी, जिनकी चर्चा इस समय देश विदेश के विद्वानों, एवं साधारण जनता में विशेष रूप से हो रही है प्रत्येक उनके जीवन तथा प्रवचनों के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं। उनके चार प्रवचन इस पुस्तिका में आपके सामने हैं जिनसे आप जान सकेंगे और विचार करेंगे कि एक साधारण कोटि का अनपढ़ व्यक्ति किस प्रकार ऐसे गहन एवं आध्यात्मिक प्रवचनों को करता है। यह विषय बहुत महत्वपूर्ण है और अभी अनुसंधान चाहता है।

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी इस समय २३ वें वर्ष में चल रहे हैं। इनका जन्मस्थान मेरठ जिले में मुरादनगर के पास खुर्रमपुर-सलेमाबाद नामक ग्राम है। ब्रह्मचारी जी के पिता श्री नानकचन्द जी कबीरपन्थी जुलाहे हैं आज भी उनके यहां घर में कपड़े बुनने का काम होता है। छोटा सा झोंपड़ीनुमा घर और निर्धनता का वहां साम्राज्य है। ब्रह्मचारी जी की माता श्रीमती सोनादेवी बहुत सरल स्वभाव की महिला हैं। ब्रह्मचारी जी के दो बड़े भाई और एक छोटी बहिन है तथा ब्रह्मचारी जी माता-पिता की तीसरी सन्तान हैं।

इस परिवार में कोई भी व्यक्ति पढ़ा लिखा नहीं, न इनके

पिता अपने बच्चों को किसी प्रकार शिक्षा दिलाने में समर्थ थे। जो व्यक्ति किसी प्रकार मेहनत मजदूरी करके अपने बच्चों का दो समय कठिनता से पेट पाल सके, वह शिक्षा तो दिलायेगा ही कहां से! अतः यह सारा परिवार अशिक्षित एवं संस्कारों से विहीन है, इसलिये यह प्रश्न ही नहीं होता कि ब्र० कृष्ण-दत्त जी को कोई पैत्रिक संस्कार या शिक्षा मिली हो।

जिस मौहल्ले में ब्रह्मचारी जी का घर है वह पूरा का पूरा निर्धन मजदूर व्यक्तियों का है। इनके जन्म स्थान के पास कुछ मुसलमान जुलाहों के घर भी हैं ब्र० कृष्णदत्त जी का बचपन इन्हीं लोगों में बीता है। जब इनका जन्म हुआ तो इनकी माता जी को तीन दिन बहुत ही कष्ट रहा और यह उल्टे पैरों उत्पन्न हुए, जिस प्रकार माता देवकी को भी योगीराज कृष्ण के पैदा होने में कष्ट हुआ था और वह भी उल्टे पैरों पैदा हुए थे, उसी प्रकार होने से पड़ोस के व्यक्तियों ने इनका नाम "कृष्णदत्त" रख दिया। गांव में आज भी इन्हें "किशना भगत" के नाम से ही लोग जानते हैं।

ब्रह्मचारी जी की अवस्था जब ७-८ मास की थी तब ही से इनका सिर हिलता था, इनकी पड़ौस की महिला "नसीबन" ने जिसने इन्हें बचपन से खिलाया है, बताया कि जब यह ९-१० मास का बैठने लगा तो इसका बूढ़ों की तरह कभी-कभी सिर हिलता था। इनकी पूज्य माता श्रीमती सोनादेवी जी से मालूम हुआ कि जब यह तीन वर्ष के बच्चे थे तब ही से रात को जब कभी सीधे (चित्त) हो जाते तब ही कुछ २ बोलते थे, थोड़े दिनों बाद हमें इनकी कथाएं समझ में आने लगीं, उनमें रामायण, महाभारत, मोरध्वज, भक्त प्रहलाद, ध्रुव आदि की कथाएं होती थीं। रात को जब इनकी कथा शुरू होती तो हम लालटैन

जलाकर बैठ जाते थे और सुनने लगते थे। बहुत देर होने पर मैं इसे करवट से लिटा लेता और यह चुप हो जाता था, ऐसा क्रम ६-७ वर्ष तक की उम्र तक चलता रहा। इस बीच हमें बहुत लोगों ने कहा कि इस बच्चे को भूत-प्रेतों का असर है। हमने अपनी अवस्था के अनुसार इसका कई जगहों पर इलाज कराया, परन्तु कोई फायदा नहीं हुआ आखिर हमने भगवान् के सहारे पर छोड़ दिया।

जब ब्र० कृष्णदत्त जी ७ वर्ष के हुए तो इनके पिता ने इन्हें अपने गांव के चौ० खचेड़ूसिंह तथा श्री चौ० इन्द्रराज जी त्यागी के यहां मजदूरी पर रख दिया। चौ० खचेड़ूसिंह आज भी विद्यमान हैं। हमने चौधरी साहिब से सब बातें मालूम की हैं उन्होंने बताया कि यह सात वर्ष की उम्र से १५ वर्ष तक की उम्र तक हमारे यहां काम करते रहे। पशुओं को जंगल में चराना, घास लाना, पशुओं का चारा-पानी, मेहमानों की सेवा करना, हुक्का भरना, पैर दबाना, कोल्हू में गन्ना डालना, गुड़ बनाना आदि खेती और घरेलू काम यह हमारे यहां करते रहे।

आज चौधरी साहिब बड़े दुःखी होते हैं कि ऐसी महान विभूति-उच्च आत्मा से हमने ऐसा काम क्यों लिया। किन्तु कर्म फल है जो प्रत्येक को कर्मानुसार कष्ट उठाना पड़ता है। इस प्रकार ब्रह्मचारी जी का १५ वर्ष तक की अवस्था का जीवन बड़ा कष्टमय एवं संघर्षमय बीता, उस समय यह बहुत कृशकाय और दुःखी रहते थे। एक दिन रात में चौ० इन्द्रराज जी त्यागी और ब्र० कृष्णदत्त खलियान में सोये, वहीं रात को सीधे होने पर इनका प्रवचन प्रारम्भ हो गया, यह बहुत घबराये, फिर इनको किसी तरह करवट से टेढ़ा किया तब यह चुप हुए, अगले दिन चौधरी साहब ने इनके पिता को बुलाकर कहा कि भाई नानक !

तुम अपने लड़के को यहां से ले जाओ इसे रात कुछ हो गया था, तब इनके पिता ने कहा कि ताऊ जी ! घबराओ नहीं इसे तो बचपन से ही ऐसा होता है। अब तो ब्र० कृष्णदत्त जी गांव भर में प्रसिद्ध हो गये। लोग कहने लगे कि भाई नानक जुलाहे के लड़के को कुछ ऐसा होता है कि जब इसे सीधा लिटा दिया जाता है तब वह बेहोश होकर बूढ़ों की तरह वेद, पुराण की कथाएं करता है और इसके बाद तो जब गांव में कोई मेहमान आता ब्रह्मचारी जी को वहां बुलाकर सीधे लिटा दिया जाता और जब तक इन्हें करवट न दिलाई जाती तब तक यह बोलते ही रहते थे फिर वह धीरे से इन्हें करवट दिला कर चुप कराते थे।

इसी बीच ६ वर्ष की अवस्था में ब्र० कृष्णदत्त जी को चेचक निकली, उसमें इनकी ऐसी हालत हो गई कि कोई भी पड़ौसी यह नहीं कहता कि यह बच्चा बच जायेगा क्योंकि चेचक में प्रायः सीधा रखते हैं और सीधा होने पर इसके प्रवचन प्रारम्भ हो जाते थे अतः इनका सारा शरीर छिल २ कर एक फोड़े की तरह बन गया था, उस समय भी सीधा होने पर यह इसी प्रकार गर्दन हिलाते और प्रवचन करते थे, पर भगवान् की कृपा और जनता के भाग्य से प्रभु की धरोहर उस कष्ट से सुरक्षित रही जो मानव-कल्याण के लिये अमूल्य निधि है।

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के पिता इनसे बहुत नाराज रहते थे, उसका कारण केवल यही इनकी सिर हिलाने और प्रवचन करने की बीमारी थी। उसके लिये वह अनेक बार इन्हें शारीरिक दण्ड भी देते थे। अनेक अवसरों पर १५ वर्ष की आयु तक उन्होंने इनकी पिटाई की। यह आदत इनके अपने वश की बात

तो थी नहीं जो यह पिता की मार के भय से छोड़ देते किन्तु बाद में यह बहुत सोचते कि क्या बात है जो मुझे इस बुरी तरह से पीटा जाता है इसी कारण यह बहुत दुःखी और भय-भीत रहते। इस प्रकार किसी तरह इस गांव में इनका समय व्यतीत हो रहा था, संयोग की बात है कि एक दिन इन्हें फिर इसी प्रकार का दौरा पड़ा और प्रवचन के बाद इनके पिता ने इन्हें बहुत पीटा जिससे इन्हें बड़ा कष्ट हुआ और यह बहुत बेचैन हुए।

गृह-त्याग

इसके बाद वहीं इस महापुरुष के मन में विचार आया कि यहां कब तक यह कष्ट पाते रहेंगे। यहां से चलकर कहींअपना इलाज करावें, यदि अच्छा हो गया तो घर लौटूंगा नहीं तो घर नहीं आऊंगा और कहीं न कहीं अपना जीवन समाप्त कर दूंगा। यह विचार मन में आने पर यह शीत काल की मध्यरात्रि में एक बजे के लगभग अपनी जन्म-भूमि और माता पिता, बन्धु बान्धवों को छोड़कर घर से भाग खड़े हुए।

इस प्रकार १-१॥ मास इधर-उधर भटकते फिरते रहे और इस तरह हस्तिनापुर जा पहुँचे। उस दिन यह कई दिन के भूखे थे, वहां इन्हें एक ठग साधु मिला, इन्होंने उससे ठहरने के लिए कहा और अपनी बीमारी की कष्ट कथा सुनाई और कहा कि किसी प्रकार आप मेरा यह रोग दूर कर दीजिये। साधु ने कहा, कि बच्चा तेरा रोग तो दूर हो जावेगा, लेकिन इसमें ४००) रुपये खर्च होंगे—अगर तू इतने रुपये दे तो हम इलाज कर देंगे—इन्होंने कहा कि मेरे पास रुपये नहीं, आप मेरा रोग खतम कर दीजिये—मैं नौकरी करके आपको

रुपया पूरा कर दूंगा—जब वह नहीं माना तो अन्त में इन्होंने कहा कि मुझे ठीक करके किसी को बेच देना, मैं कर्ज, उसके यहां काम करके उतार दूंगा। वह न माना, आखिर यह क्रोध में वहां से भाग आये, और २ मास इधर-उधर देहातों में घूमते फिरते बरनावा आ पहुंचे, जहाँ से इनके जीवन की धारा बदली और उन्होंने विशेष ख्याति पाई।

बरनावा में

यद्यपि बरनावा में आने से पहिले ही ब्रह्मचारी जी की चर्चा आसपास तथा दूर दूर के देहातों में थी। मैंने आज से १५ वर्ष पूर्व सहारनपुर में इनके विषय में सुना। इनके ग्राम के पास के एक मा० हरस्वरूप जी ने इनके प्रवचनों को सुना था और मुझे बताया था, किन्तु मैं भी उस समय दूसरे भाइयों की तरह इसे नहीं मानता था—भाई हरस्वरूप जी पौराणिक थे अतः यह कहकर कि आप तो ऐसी बातों पर विश्वास कर लेते हैं यह कभी नहीं हो सकता कि बिना पढ़ा लिखा कोई व्यक्ति इस तरह के भाषण दे सके।

बरनावा आकर यह महात्मा श्री धर्मवीर त्यागी के यहां ठहरे, जिनका सम्बन्ध चौ० इन्द्रसिंह जी के यहां था और उनका परिवार इन्हें जानता था, वहां पर ही इनकी कथा होती रही, कई मास यह कथा चलती रही, लोग आते और सुनते, किसी की समझ में कुछ आता, किसी की में नहीं, कोई श्रद्धा से बैठे रहते, कोई कौतूहल से—अनेक देहाती महिलाएं भी आती रहती थीं।

बरनावा जिला मेरठ में हिण्डन और काली नदी के संगम पर है। यही महाभारत काल का प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान वह "वारणावत" है जहां कौरवों ने पाण्डवों को अग्नि में जलाने

के लिए लाक्षागृह का निर्माण किया था—और सौभाग्य से पाण्डव वहां से बच निकले थे, आज भी वहां एक बड़ा ऊंचा टीला है, यह स्थान रमणीय है किन्तु इस स्थान पर उत्तर प्रदेश सरकार के "वन विभाग" का अधिकार है। इस स्थान से महानन्द मुनि का सम्बन्ध ब्रह्मचारी के भौतिक पिण्ड से हुआ ऐसा उनके प्रवचनों और बरनावा निवासियों से मालूम हुआ।

उनका कथन है कि जिस समय प्रारम्भ में यहां ५-६ मास तक कृष्णदत्तजी की कथा हुई तो कभी भी कथा में महानन्द मुनि का कोई संकेत तथा नामोच्चारण नहीं हुआ।

एक दिन ब्रह्मचारी जी अपने तीन चार साथियों के साथ घूमते हुए इस लाक्षा मण्डप के स्थान पर गये, वह सायंकाल ४-५ बजे का समय था, थोड़ी देर वहां घूम कर यह आ गये और उसी दिन रात्रि की कथा में यह कहा गया कि गुरु जी आज तो आप हमारे आश्रम में गए थे और उसके बाद से बराबर इनके प्रवचनों में महानन्द के प्रश्न आते हैं—और यह अनेक बार कहते हैं कि महानन्द जी के संकेतानुसार ऐसा जान रहे हैं। इनके प्रवचनों से ऐसा आभास होता है, कि कोई महानन्द नाम के इनके पूर्व जन्म के साथी या शिष्य सूक्ष्म शरीर से प्रवचन के समय इनके सम्पर्क में आते हैं, और उस समय उनके अनेक गम्भीर एवं महत्वपूर्ण प्रश्न होते हैं जिनका यह बड़ा ही तर्क पूर्ण एवं शास्त्र-सम्मत उत्तर देते हैं—जब से महानन्द मुनि का इनसे सम्पर्क हुआ, इनके प्रवचनों में विलक्षणता आ गई, ऐसा वहां के श्रोता कहते हैं—हमने तो पूर्व के प्रवचन सुने नहीं हैं, यह उन लोगों से सुना है। अनेक बार इन्होंने अपना सम्पूर्ण भाषण अपनी उस विशेष स्थिति में केवल "संस्कृत-तुल्य" उस भाषा में ही दिया कि अब भी यह

मन्त्रों के रूप में प्रचवन के प्रारम्भ तथा अन्त में वे बोलते हैं।

बरनावा से ही इन्हें यज्ञों के प्रति रुचि हुई और यह धीरे-धीरे देहातों में घूमते रहे—वहां के लोगों में इनके प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई और यह महात्मा तथा ऋषि एवं किशना भगत के नाम से भिन्न २ स्थानों में प्रसिद्ध हुए, साथ ही दूसरे स्थानों में भी इन्हें बुलाया जाने लगा। मेरठ, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर शहरों में तथा इन जिलों के कस्बों और देहातों में इनके अनेक प्रवचन हो चुके हैं। साथ ही यह बरनावा में दिसम्बर मास में ३-४ वर्ष से एक यज्ञ कराते हैं—और देहात के श्रद्धालु जन इन्हें बड़ा सहयोग प्रदान करते हैं। ब्र० कृष्णदत्त जी स्वयं तो पढ़े लिखे न होने के कारण यज्ञ आदि करा नहीं सकते अतः इन्होंने वैदिक आर्य विद्वानों को बुलाकर यह यज्ञ सम्पन्न कराए। शाहदरा (कबूलनगर) के श्री पं०सुरेन्द्र शर्मा गौर जोकि प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान् हैं—इनको यज्ञों में लगभग ४ वर्ष से बुला रहे हैं- और उन्होंने इनकी अद्‌भुत प्रतिभा से प्रभावित होकर उत्तर प्रदेश प्रतिनिधि सभा के साप्ताहिक-पत्र 'आर्यमित्र' में इनके विषय में लेख प्रकाशित कराया तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को भी लिखा कि एक ऐसा युवक है जो पढ़ा लिखा न होने पर भी वेदों के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए—सुन्दर एवं प्रभावशाली भाषण करता है—किन्तु किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया और महत्वपूर्ण तथा सार गर्भित ये प्रवचन उसी तरह बेकार जाते रहे, जैसे किसी को रत्नों का पता न होने से उन्हें वह फैंक देता है।

हमारा सम्बन्ध कैसे बना ?

आर्य समाज विनयनगर का सम्बन्ध इनसे कैसे बना और

इस महत्व पूर्ण विषय को हमने क्यों अपने हाथ में लिया।

यद्यपि ब्रह्मचारी जी की माता दिल्ली की ही कन्या है और मामा आदि आज भी इस महानगरी में ही निवास करते हैं, यह बचपन से ही यहां आते रहे, और हमारे सम्पर्क में आने से पूर्व भी लोधी रोड,मालवीय नगर में दस २ पांच २ व्यक्तियों की उपस्थिति में इनके प्रवचन कभी २ हुए—किन्तु किसी ने इस समस्या पर कोई ध्यान नहीं दिया। पौराणिक विचार वालों ने इसलिए कि इनके प्रवचनों से उनकी मान्यताएं समाप्त होती हैं, और आर्य विचार धारा वालों ने अविश्वास, ढोंग व पाखण्ड समझ कर इस समस्या को हाथ में नहीं लिया। दिल्ली में पिछले मई १९६१ के आर्य महासम्मेलन पर भी ब्रह्मचारी कृष्णदत्तजी को ब्र० दयाचन्द जी (जो कि स्व० स्वामी आत्मानन्दजी महाराज के शिष्य तथा विद्वान् हैं) लेकर आये—उन्होंने सम्मेलन के कार्यकर्ताओं से कहा कि एक ऐसे महात्मा हैं—आप उनके प्रवचन सुनें, किन्तु किसी ने ध्यान नहीं दिया। मुझे अब से दो वर्ष पहिले यह पुनः मालूम हुआ कि यह ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी शामली तथा अन्य देहातों में प्रवचन कर रहे हैं और असंख्य लोग उन्हें सुनने आते हैं—तो मैंने शामली जाने का कार्यक्रम बनाया। जिस दिन मैं जाना चाहता था उसी दिन मेरे पूज्य पिता जी (श्री पं० मुरारीलाल जी शर्मा) इनके प्रवचन सुनने के बाद दिल्ली मेरे पास आ गये, उन्होंने इनके ८-९ प्रवचन सुने थे। उनके बताने पर मुझे अधिक इच्छा हुई कि इन्हें सुनना चाहिये। लगभग एक वर्ष तक हम बराबर खोजते रहे कि यह कहीं मिलें तो हम बुलाएं—मैंने अपनी आर्य समाज के मन्त्री श्री रोशनलाल जी गुप्त से कहा कि इस प्रकार के एक व्यक्ति हैं उनको यहां बुलाना चाहिए

उन्होंने कहा कि आप जैसे कहें हम वहां जाने को तैयार हैं। किन्तु इनका कहीं पता नहीं चला, उसके दो वर्ष बाद मेरे पास श्री डा० बनवारीलाल जी शर्मा का पत्र आया और कुछ आकाश वाणी के पत्र व्यवहार की प्रतिलिपि, जिनमें लिखा था कि यदि ब्र० कृष्णदत्त जी किसी समय दिल्ली आएं तो हम उनके प्रवचनों के टेप रिकार्ड करायेंगे—मैंने डा० साहिब को लिखा—आप उन्हें भेजदें--बहुत प्रयत्न के बाद २८ दिसम्बर १९६१ को ब्र० कृष्णदत्त जी मेरे पास आए, मैंने अपने विनय नगर आर्य समाज के मन्त्री जी तथा अन्य अधिकारियों से परामर्श कर इनका पहिला प्रवचन—भारत सेवक समाज में २९ दिसम्बर १९६१ को कराया जिसमें २५० के करीब सज्जन पधारे थे, वह प्रवचन इतना प्रभावशाली एवं आकर्षक था कि सबने ही उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की, और उसी समय निर्णय हुआ कि कल से इनके प्रवचन आर्यसमाज विनयनगर में होने चाहिएं—

प्रथम दिनका विषय"आत्म परमात्म" विवेचन था और मानव को परमात्मा की उपासना क्यों करनी चाहिये, बिना भगवद् भक्ति के मानव का कल्याण कदापि नहीं हो सकेगा। इसका स्त्री पुरुषों पर बहुत अधिक प्रभाव हुआ—आगे ३० और ३१ दिसम्बर को आर्यसमाज में प्रवचन हुए- जिनमें बताया कि अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि क्यों होतीहै! यज्ञों के न करने से कितनी हानि मानव समाज को होती है--तीसरे दिन के प्रवचन में अनेक विद्वान् तथा मनोवैज्ञानिक डाक्टर आदि थे। हजारों की भीड़ में ३१ दिसम्बर का विषय "प्राण की महत्ता" पर था और इतना गम्भीर एवं दार्शनिक था कि विद्वान् और वैज्ञानिक भी दांतों तले उंगली दबा रहे थे, और उन्होंने बाद में मुझे कहा कि हम बड़े आश्चर्य चकित हैं कि हमने आज तक इतना महत्व

पूर्ण भाषण इस धाराप्रवाह से कभी नहीं सुना।

इसके बाद १ जनवरी १९६२ से ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के प्रवचनों का टेप रिकार्ड किया गया, प्रत्येक दिन नया विषय होता था, नवीन ढंग से उपस्थित किया जाता था, जनता की उपस्थिति इतनी अधिक होती थी कि विनय नगर आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं को बड़ी कठिनता से जनता को अनुशासन में रखना पड़ता था। ७ जनवरी को विशेष यज्ञ हुआ और ब्र० जी का ११ से १२॥ तक प्रवचन हुआ जिसमें १० हजार से भी अधिक उपस्थिति थी। उसके बाद ब्रह्मचारीजी हरदोई चले गये। वहां पं० सुरेन्द्र शर्मा जी ने उन्हें बुलाया था।

ब्रह्मचारी जी के जाने के बाद हमने आ० स० विनय नगर के तत्वावधान में एक प्रवचन अनुसन्धान-समिति का गठन किया और निर्णय किया कि इनके प्रवचनों को सुरक्षित रखने के लिए स्वयं एक टेप रिकार्ड खरीद लिया जाये - और यह विषय अनुसन्धान के लिये वैदिक विद्वानों तथा डाक्टरों वैज्ञानिकों एवं योगियों के समक्ष रक्खा जावे।

इस समय ७ जनवरी तक जो अनेक विशिष्ट महानुभाव प्रवचन सुनने आये उनमें भूतपूर्व राष्ट्रपति महोदय के ज्येष्ठ पुत्र श्री डा० मृत्युञ्जयप्रसाद जी और डा० विश्वनाथ प्रसादजी डा० रणवीर जी रांगड़ा, डा० देशमुख महोदय श्री वीरसेन जी वेदश्रमी, एवं अनेक वैदिक विद्वान् तथा दार्शनिकों ने यह प्रवचन सुने।

अनुसन्धान समिति ने बड़े प्रयत्न और भाग दौड़ के बाद ८५००) रु० में एक टेप रिकार्ड खरीद लिया, आर्यसमाज विनय नगर के अधिकारी सर्वश्री महेन्द्रनाथ जी, श्री मनोहरलाल गुप्त, श्री चन्द्रप्रकाशजी मन्त्री श्री रोशनलाल जी श्री बैजनाथ जी

श्री धर्मवीर श्री बलवन्तराय जी खन्ना तथा श्री दीनानाथ जी आदि महानुभावों ने इस कार्य में दिन रात का समय दिया—और सब ही बन्धुओं ने इस कार्य को सफल बनाने में सहयोग दिया।

अब तक ब्र० कृष्णदत्त जी के अनेक नवीन विषयों पर अनुसन्धान समिति के पास पचास के लगभग टेप रिकार्ड हैं—जो कि शीघ्र ही जनता के सामने पुस्तक रूप में पहुंचेंगे—इन सबही प्रवचनों में मानव की अनेक समस्याओं का समाधान है--अनेक प्रश्न तथा शंकाओं के उत्तर हैं, नये २ विषयों का नये रूपसे प्रतिपादन किया गया है, मानव समाजकी अनेक भ्रान्त धारणाओं का बुद्धि पूर्वक खण्डन कर विशुद्ध वैदिक मत उपस्थित किया गया है--लोक प्रचलित पौराणिक मान्यताओं का तर्क पूर्ण खण्डन एवं अनेक वैदिक अलंकारों का स्पष्टी करण किया गया है। संक्षेप में मानव कल्याण के लिए यह प्रवचन इतने उपयोगी सिद्ध होंगे जिनके महत्व के विषय में लेखनी लिखने में असमर्थ है। इनके प्रवचनों से जनता में आस्तिकता एवं सात्विकता का प्रचार बढ़ा है। अनेक व्यक्तियों ने अपने जीवन में कुछ परिवर्तन भी किए हैं।

ब्रह्मचारी जी के जीवन की अनेक रोचक घटनाएं स्थान-भाव के कारण पाठकों के समक्ष नहीं रख सके, दूसरे प्रकाशन में विस्तृत जीवन दिया जायगा--पाठक प्रतीक्षा करें।

जन्माष्टमी,
ता० २३, अगस्त
१९६२

प्रकाशचन्द्र भार्गव
(प्रधान, प्रवचन अनुसन्धान समिति)
विनय नगर नई दिल्ली।



द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में

प्राक्कथन

प्रिय पाठक वृन्द !

आज हमें आपकी सेवा में ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के प्रवचनों की प्रथम पुस्तक का द्वितीय संस्करण भेंट करते हुए अपार आनन्द हो रहा है, आप महानुभावों ने और वैदिक विचारधारा के सभी प्रेमियों ने जितना इस पुस्तक का आदर किया है और जिस इच्छा से आपने इस पुस्तक की मांग की है जिससे यह पुस्तक थोड़े समय में ही समाप्त हो गई, इससे ऐसा अनुभव होता है कि आज भी संसार में आस्तिकता लोप नहीं हुई और जब कोई आस्तिक विषय जन समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है तो वह उसको अच्छी प्रकार हृदयंगम करने की चेष्टा करता है।

चतुर्थ पुस्तक की भूमिका में निवेदन किया गया था कि ब्रह्मचारी जी का विस्तृत जीवन—वर्त्तमान और प्राचीन—प्रथम पुस्तक में दिया जा रहा है अतः इस पुस्तक की भूमिका के द्वितीय संस्करण में पूर्व जन्म के सम्बन्ध का विशेष वर्णन किया जा रहा है, वर्त्तमान जीवन के सम्बन्ध में इस पुस्तक की प्रथम भूमिका में ही पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। संक्षेप में ब्रह्मचारी जी का वर्त्तमान जीवन केवल एक ग्रामीण, अनपढ़, अशिक्षित नवयुवक के रूप में है जिनको यह माना जा सकता है कि यह कोई भी ऐसी बात नहीं कह सकते कि जिससे कोई ऐसी भावना उत्पन्न हो कि यह कोई महापुरुष

हैं, परन्तु जब एक विशेष स्थिति में उनके प्रवचन प्रारम्भ होते हैं तो उनकी धारा प्रवाह वैदिक स्तुति, वेद गान तथा मार्मिक गूढ़ विषयों का विवेचन देखकर आश्चर्य होता है, इसलिए यह निरंतर प्रयत्न किया जा रहा है कि ब्रह्मचारी जी के पूर्व और इस जीवन के सम्बन्ध में कुछ खोज की जा सके।

ब्रह्मचारी जी के स्वयं के प्रवचनों से ऐसा विदित होता है कि यह महापुरुष अपने पूर्व जन्मों में अनेक बार शृङ्गी ऋषि के रूप में प्रसिद्ध हुए, प्रवचनों में यह भी स्पष्ट किया कि शृङ्गी कोई विशेष नाम नहीं परन्तु उपाधि है और यह उस व्यक्ति को दी जाती थी जो व्यक्ति या साधक वृष्टि यज्ञ और पुत्रेष्टि यज्ञ कराने में विशेष प्रवीण हो।

प्राचीन ग्रन्थों में भी इस प्रकार का कुछ वर्णन आता है। कहते हैं कि एक समय एक राजा के राज्य में बारह वर्ष से वर्षा न हुई और जब नारद जी वहां पधारे तो राजा ने नारद से कहा कि महाराज! हमारे यहां भारी अकाल पड़ रहा है इसको दूर करने का क्या उपाय है? उस समय नारद ने कहा कि हे राजन्! तुम्हारे राष्ट्र के बाहर गहन वन में शृङ्गी ऋषि तपस्या कर रहा है और यदि तुम उसको अपने राज्य की सीमा में ले आओ तो निश्चित रूप से तुम्हारे यहां वर्षा हो जायेगी।

राजा ने ऋषि को अपनी सीमा में लाने के उपाय किये और इस कार्य के लिये एक अप्सरा को नियुक्त किया। अप्सरा ने ऋषि की तपस्या के स्थान पर जाकर अप्रत्यक्ष रूप से वृक्षों, लता, झुण्डों की ओट में नृत्य प्रारम्भ कर दिया। वह कभी भी उनके सम्मुख न आई क्योंकि उसको भय था कि यदि इस प्रकार का आदित्य ब्रह्मचारी आंख खोल कर

देखने पर क्रोधित हो जाये और शाप दे दे तो तू नष्ट हो जायेगी, तेरा अहित हो जायेगा।

एक-दो दिन तो नृत्य का कोई असर न हुआ परन्तु धीरे-धीरे कुछ ऐसा हुआ कि वह अपनी तपस्या से जाग्रत् हुए और उस नृत्य के संगीत को सुनकर उधर की तरफ पहुंचते तो वह नर्तकी तिरोहित हो जाती। इस प्रकार से उनको कुछ उत्सुकता जागी। कुछ दिनों के पश्चात् वह नर्तकी मीठा हलुवा बनाकर ले जाती और किसी वृक्ष पर लपेट देती और यह ऋषि इसको खाते जिससे इन्हें जिह्वा का स्वाद प्रारम्भ हुआ।

कुछ समय के पश्चात् एक दिन वह नर्तकी प्रत्यक्ष रूप में सामने आ गई और शृङ्गी ऋषि उसकी तरफ चलने लगे, वह भी अपना नृत्य करती हुई आगे तेजी से बढ़ती चली गई, यह ऋषि भी आगे चलते गये और परिणाम यह हुआ कि वह उन्हें राज्य की सीमा में ले गई जिस कार्य के लिये वह नियुक्त की गई थी। शृङ्गी ऋषि के वहां पहुंचने पर राज्य में वर्षा प्रारम्भ हो गई, प्रजा ने नृत्य संगीत आदि से बड़ा समारोह किया और ऋषि को सम्मानित किया। इसके पश्चात् वह वन चले गये।

इस प्रकार की घटनायें कहीं-कहीं मिलती हैं उनमें से कुछ किंवदन्तियां हैं, कुछ सत्य हैं, कुछ असत्य हैं।

इसी प्रकार ब्रह्मचारी जी ने अपने एक प्रवचन में बतलाया कि उन्होंने ८० वर्ष की अवस्था में महाराजा दशरथ के यहां पुत्रेष्टि यज्ञ कराया जिसके उपरान्त राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए।

यह हो सकता है कि जो आत्मा वर्त्तमान में ब्रह्मचारी जी के शरीर में निवास कर रही है इसको अनेक जन्मों में अपने

पूर्व जन्मों के अभ्यास के कारण इसी प्रकार के कार्य करने पड़े हों और इसी लिए इन जन्मों में शृङ्गी ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हुए हों। आज के युग में भी हम देखते हैं कि कोई अपने नाम के सामने व्यास लिखता है और कोई कुछ लिखता है, इसका अभिप्राय यह नहीं कि वह वेद-व्यास जिसने महाभारत काल में वेदों का भाष्य किया वह ही वेद व्यास हो परन्तु ऐसा हो सकता कि वह व्यास की आत्मा दूसरे जन्मों में भी आकर उस प्रकार का कार्य कर सकती है। इसी प्रकार सतयुग से लेकर शृङ्गी ऋषि की आत्मा ने सतयुग, त्रेता और द्वापर में जब-जब उन्होंने जन्म लिया हो उस समय यह उसी रूप में यज्ञों के अन्दर विशेष रुचि रखने के कारण, विशेष रूप से ख्याति प्राप्त करने के कारण यह शृङ्गी के नाम से प्रसिद्ध हुए हों और आजके जीवन में भी वे यज्ञों का ही प्रचार कर रहे हैं।

कई बार ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति अगर किसी विषय के अन्दर विशेष रुचि लेता है या उस विषय में पारंगत हो जाता है तो साधारण जन भी उसको उस नाम से पुकारने लगता है। जैसे कोई क्रोध में इतना तिलमिला जाता हो कि उसको अपना होश न रहता हो तो उसको दुर्वासा के नाम से पुकारा जाता है और यदि कोई व्यक्ति इधर-उधर भ्रमण करता रहता है और यहां की वहां और वहां की यहां खबरें पहुंचाता है तो उसको नारद नाम से पुकारा जाता है। इसी प्रकार से पूर्व जन्म के गौतम, कपिल, व्यास और दूसरे ऋषि मुनि ब्रह्मा इत्यादि जितने भी हुए हैं वह दूसरे युगों में जब उनमें वह विशेषता होती है तो वह उन्हीं नामों से पुकारे जाते हैं, इसी प्रकार से यह हो सकता है कि यह आत्मा अनेक

युगों में अनेक जन्मों को धारण करके भी वह उसी प्रकार का कार्य करते हुए शृङ्गी नाम से प्रख्यात हुई हो क्योंकि आत्मा को निरंतर ज्ञान रहता है, ज्ञान और प्रयत्न आत्मा का स्वाभाविक गुण है, इस गुण के कारण जो विशिष्ट आत्माएं होती हैं, जो मोक्ष को प्राप्त करने वाली आत्माएं होती हैं, योगाभ्यासी आत्माएं होती हैं वे पूर्व जन्म के सम्बन्धों को और पूर्व जन्म के ज्ञान को जान लेती हैं। इसी प्रकार यह हो सकता है कि इस आत्मा ने जो ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के शरीर में है और इस प्रकार का कार्य कर रही है इसने अपने पूर्व जन्मों के योगाभ्यास और स्मृति के कारण वही कार्य किए हों और अपने अनेक जन्मों में शृङ्गी ऋषि के नाम से पुकारे गये हों ऐसा हो सकता है।

ब्रह्मचारी जी ने अपने अनेक प्रवचनों में बहुत से ऐसे ऐतिहासिक तथ्य बतलाये हैं जो साधारण तौर पर किसी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होते। महाभारत के समय की कुछ घटनायें, रावण के सम्बन्ध में कि रावण कौन था वह किस प्रकार रावण बना, पहिले वह ब्राह्मण पुत्र था उसका वरुण नाम था, आदित्य ब्रह्मचारी था, ४८ वर्ष की अवस्था में महिदन्त राजा की कन्या से विवाह संस्कार हुआ, राजा महिदन्त पहिले लंका का राजा था, कुवेर ने लंका का राज्य उससे छीन लिया, केवल एक छोटे से राज्य में वह राज्य करता था, उस समय उसकी कन्या उनके पुरोहित तत्व मुनि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त करती थी, वह कन्या विदुषी थी, राजा महिदन्त जब अपने पुरोहित के पास गये और पूछा कि महाराज आपने मेरी कन्या को शिक्षा दी है मैं यह जानना चाहता हूं कि यह क्षत्रिय कन्या कौनसे गण वाली है और किस कुल में इसका

संस्कार होना चाहिये तो उस समय उस ऋषि ने कहा था कि यह कन्या ब्राह्मण कुल के योग्य है। तब राजा महिदन्त ब्राह्मण कुल खोजने के लिये इधर-उधर भ्रमण करने लगे और पुलस्त्य ऋषि के पुत्र मुनिचन्द्र ब्राह्मण के पास पहुँचे और उनके पुत्र वरुण के साथ अपनी कन्या के विवाह संस्कार के लिये कहा। वरुण को कन्या के गुण पसन्द आये और उन्होंने संस्कार करा लिया, संस्कार के समय राजा महिदन्त ने कहा कि मैं आपकी कुछ सेवा न कर सका क्योंकि मेरा सूक्ष्म सा राज्य रह गया है और मेरी स्वर्ण की लंका को कुवेर ने विजय कर लिया है, उस समय उस वरुण ने प्रतिज्ञा की कि मैं लंका की विजय करने के पश्चात् ही अपनी पत्नी के द्वार जाऊंगा। वह ब्राह्मण था, नाना राज्यों में भ्रमण किया और ब्राह्मण की दक्षिणा में दस सहस्र सेना एकत्रित करके लंका पर विजय प्राप्त की और राजा महिदन्त से कहा कि यह आपका राज्य है आप स्वीकार कीजिये। उस समय राजा महिदन्त ने कहा अच्छा मैंने यह तुम्हें अपनी कन्या के संस्कार में तुम्हें अर्पित कर दिया क्योंकि उस समय मैं कुछ न कर सका था। इसके पश्चात् जब वह लंका का स्वामी बना तो राज्याभिषेक के समय इसका नाम रावण नियुक्त किया गया। रावण का शब्दार्थ ऊंचे, दानी व वीर का बतलाया गया है। इस प्रकार के तथ्यों को उन्होंने प्रगट किया है। यह सब आपको ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों की पंचम पुस्तक जो शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रही है उसमें पढ़ने को मिलेगा, वहां यह भी वर्णन किया गया है कि रावण को दशानन क्यों कहते थे तथा रावण की नाभि में अमृत क्या वस्तु थी, माता सीता का नाम सीता इसलिए नियुक्त किया गया था कि जब राजा जनक के राज्य

में अकाल पड़ा तो राजा जनक को ऋषियों ने वाटिका में हल चलाने का आदेश दिया। ऐसा करने से इन्हें वृष्टि हो गई इधर वृष्टि हुई और उनके गृह में कन्या का जन्म हो गया, व्याकरण की दृष्टि से उसका नाम सीता नियुक्त कर दिया गया 'ता' नाम वृष्टि का और 'सी' नाम हल की फाली का अर्थात् जिस हल की फाली को चलाने से वृष्टि हुई हो।

इसी प्रकार कुश का जन्म सुरन्धित नाम के ऋषि की सुमित्रा नामक कन्या से बतलाया है जिसकी पालना सीता ने की और राम का पुत्र कहलाया और यह भी बतलाया कि इस कन्या के व्रहित नाम के ब्रह्मचारी से गर्भ रह गया था और पुत्रोत्पत्ति के बाद लज्जावश उसे कुशा पर स्थिर कर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के निकट छोड़ कर अपने स्थान को चली गई थी।

इसी प्रकार एक प्रवचन में इन्होंने यह भी बतलाया कि जब राम रावण से युद्ध करने के लिये पहुंचे तो उन्होंने समुद्र तट पर एक यज्ञ किया जिसमें रावण को उस यज्ञ का ब्रह्मा बनाया, सीता को भी उस यज्ञ में बुलाया गया, यह घटनायें इस प्रकार की हैं जो रामायण इत्यादि में उपलब्ध नहीं हैं परन्तु इन्होंने इनका प्रमाण देते हुए कहा है कि महर्षि लोमश ने स्वयं इस यज्ञ को देखा, उनसे तथा वाल्मीकि से इस कथा का पता चला।

इसी प्रकार एक प्रवचन में कर्ण के जन्म के सम्बन्ध में भी बतलाया कि जब कुन्ती ऋषि कुल में विद्याध्ययन किया करती थी तो उस समय श्वेत नाम के ब्रह्मचारी से वह गर्भवती रह गई थी, पुत्र होने के पश्चात् कुशा पर स्थिर कर यह बालक गंगा को अर्पित कर दिया गया था परन्तु साथ में ही श्वेत

ब्रह्मचारी का आश्रम था, उसके साथियों ने उस बालक को गंगा में से निकाल लिया और उसकी पालना की जो आगे चलकर कर्ण कहलाया।

इस प्रकार के जो विचार हैं, इस प्रकार की जो घटनायें हैं कोई ऐसा ही व्यक्ति दे सकता है जिसने उस समय प्रत्यक्ष रूप से सब घटनाएं देखी हों अथवा सुनी हों और इस आधार पर वह बातें तर्क संगत हैं और बुद्धि को मान्य लगती हैं और अनुभव होता है कि यह सब सत्य है, ऐसा एक व्यक्ति जो निरक्षर है, जिसने कुछ पढ़ा लिखा न हो, एक विशेष स्थिति के अन्दर आकर के इस प्रकार की घटनाओं को बोलते हैं तो निश्चित रूप से ऐसा हो सकता है कि वह पूर्व जन्म की स्मृतियों के आधार से ही यह सब कुछ वर्णन कर रहा है।

ब्रह्मचारी जी ने अपने प्रवचनों में कभी भी महाराजा दशरथ को दशरथ नहीं कहा हमेशा यशरथ उच्चारण किया है, यह बात ऐतिहासिक प्रसिद्ध भी है कि महाराजा दशरथ राजा इन्द्र के परमसहयोगी थे। एक बार महाराजा दशरथ इन्द्र के सहायक रूप में युद्ध कर रहे थे तो उस समप उनके रथ के पहिये की किल्ली निकल गई और उस युद्ध के समय महारानी केकई ने अपनी उंगली डालकर या हाथ डालकर उसको सम्भाले रक्खा जिसके कारण महाराजा दशरथ ने महारानी केकई को तीन वर दिये जिनमें से केकई ने एक वर से राम को बनवास प्राप्त कराया। उस समय यह अयोध्यापति यशरथ के नाम से प्रसिद्ध थे अर्थात् जिनका रथ किसी भी युद्ध के अन्दर जाकर कभी भी पराजित नहीं हुआ या पराजित नहीं होगा, तो वह यशस्वी रथ वाला व्यक्ति ही यशरथ के नाम से पुकारा गया। इसी प्रकार जब कभी महाभारत काल के अभिमन्यु का

नाम लिया तो अभिमन्यु न कह कर हमेशा अभयमन्यु कहा। इस प्रकार से और भी अनेक नाम इस तरह के हैं जिनको हम अशुद्ध उच्चारण करते हैं, उनका जो रूप है वह ब्रह्मचारी जी के प्रचचनों में दूसरा ही प्राप्त होता है। यह सब घटनायें और यह सब बातें इन प्रवचन पुस्तकों में, जो चार संस्करण निकल चुके हैं और पांचवा संस्करण शीघ्र ही प्रेस का जा रहा है उनको गम्भीरता और गहन अध्ययन से आप उन पर विचार करें।

जैसा ब्रह्मचारी जी के सम्बन्ध में कहा गया कि उनके प्रवचन से विदित हुआ कि वह पूर्व जन्म के शृङ्गी ऋषि थे, अपने प्रवचनों में प्रश्नों का उत्तर देते हुए तथा कर्मों की गति बतलाते हुए उन्होंने बतलाया कि उन्होंने कौन से ऐसे कर्म किये जिनसे उन्हें वर्त्तमान में ऐसी योनि प्राप्त हुई है जिसमें उन्हें अपने लिये कोई ज्ञान नहीं परन्तु एक विशेष स्थिति में जन साधारण के लिये वेद वाणी का प्रसार करते चले जा रहे हैं, पौराणिक मान्यताओं का तर्क संगत खण्डन तथा महान् गूढ़ विषयों को भी सरल भाषा में हमारे समक्ष नियुक्त करते हैं और इस स्थिति के कारण उन्हें आज कोई पाखण्डी उच्चारण कर रहा है कोई ढोंगी उच्चारण कर रहा है।

इस सम्बन्ध में उन्होंने यह वर्णन किया है कि सतोयुग में गुरु ब्रह्मा इनके गुरु थे, उन्हीं के चरणों में बैठकर इन्होंने वेद संहिताओं का अध्ययन तथा योगाभ्यास आदि किया, उस समय के युग में ब्रह्मा से अधिक उनके लिये कोई भी श्रेष्ठ-आत्मा नहीं थी और गुरु ब्रह्मा के आदेशों का हर प्रकार से पालन करते थे।

ब्रह्मा के पुत्र महा सृष्ट मुनि थे जो तुम्बर नाम की धर्मपत्नी

के साथ एक स्थान में विराजमान रहते थे, उन्होने गुरु ब्रह्मा के आदेशों के अनुकूल ब्रह्मचर्य को धारण किया, तपस्या की और उसके पश्चात् पिता ब्रह्मा की आज्ञा से एक पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम कुभी मुनि नियुक्त किया। बाल्यकाल से ही उसे ऊंचे वातावरण में शिक्षा दी जाने लगी और शीघ्र ही वेदों का प्रकाण्ड बुद्धिमान् बन गया। जब वह २५ वर्ष का आदित्य ब्रह्मचारी बन गया तो उसने माता पिता से अपने परम्परा के आधार पर आध्यात्मिक विज्ञान को जिसको गुरु ब्रह्मा आचार्य आदि खोजते रहेहैं जानने की जिज्ञासा प्रगट की और उनकी आज्ञा पाकर गुरु की खोज में अनेक ऋषि-मुनियों से सम्पर्क किया और स्वयंभूमनु महाराज ने उन्हें सलाह दी कि तुम ब्रह्मा के शिष्य जिन्हें शृङ्गी ऋषि कहते हैं और जिन्होंने ८४ वर्ष से मिथ्या उच्चारण नहीं किया है सत्यवादी हैं, उनके स्थान पर चले जाओ, उन्होंने आत्मा परमात्मा को जान लिया है, उनका साक्षात्कार कर लिया है वह गुरु के योग्य हैं।

उस बालक के हृदय में यह बात आ गई और उनकी शरण में जा कर शिक्षा पाने लगा, उस ऋषि आत्मा ने भी गुरु के नाते उस बालक को शिक्षा देने लगे और योगाभ्यास की विधि देने लगे, वह अभी किसी कार्य में अधूरा था परन्तु गुरु से आज्ञा लेकर तपस्या करने चल दिया, सुना जाता है कि उस बालक ने २५० वर्ष से अधिक की समाधि लगाई, जब समाधि की इतनी अधिक अवधि हो गई तो गुरु ब्रह्मा ने समाधि जाग्रत कराने के लिये सृष्ट मुनि को नियुक्त किया।

समाधि के पश्चात् उसे अभिमान हो गया कि मैंने तपस्या से तीनों लोकों को विजय कर लिया और वह स्थान प्राप्त कर लिया है जो ब्रह्मा आदि भी प्राप्त न कर सके। जहां भी कहीं

यह कुभी मुनि जाते वहां इसी प्रकार के वाक्य उच्चारण करते, अनेक ऋषियों ने इनसे कहा भी कि ऐसे वाक्य तुम श्रृङ्गी ऋषि से न कहना तुम उनके गुरु का अपमान कर रहे हो परन्तु यह तो अभिमान में था जब श्रृङ्गी ऋषि के समक्ष पहुंचा तो वहां वह ही वाक्य उच्चारण कर दिये, श्रृङ्गी ऋषि से अपने गुरु ब्रह्मा का अपमान न सहा गया,उन्होंने अपनी योग दृष्टि से देखा कि अब इस का मृत्यु समय निकट आ चुका है अतः उसे शाप दे दिया कि तू मृत्यु को प्राप्त हो और उसकी मृत्यु हो गई।

मृत्यु से चारों ओर हाहाकार मच गया कि ऐसा तपस्वी मृत्यु को प्राप्त हो गया। ब्रह्मा आचार्य अपने शिष्य मण्डल को लेकर उस स्थान पर पहुंच गये और श्रृङ्गी ऋषि से कहा कि तुमने एक ऋषि बालक को नष्ट कर दिया है, वह तुम्हारा शिष्य था तुमने उसको यथार्थ शिक्षा क्यों न दी थी, शिक्षा देकर उसको ठीक मार्ग पर चलाते परन्तु तुमने मृत्यु दण्ड दे दिया, आज तुम्हें भी इन कर्मों का फल भोगना पड़ेगा, जन्म-जन्मान्तरों में सूक्ष्म शरीर द्वारा लोक-लोकान्तरों में जन्म पाते हुए सतोयुग, त्रेता और द्वापर सब ही काल देखो और जब कलियुग के ५५०० वर्ष व्यतीत हो जायेंगे तब तुम्हारा एक कुलीन गृह में जन्म होगा, आकृति तुच्छ होगी, शरीर में अज्ञानता होगी,यह ज्ञानकी निधि तुम्हारे समक्ष न होगी परन्तु एक विशेष अवस्था में ऐसी गति हुआ करेगी कि इस आत्मा का इस शरीर से उत्थान होकर अन्तरिक्ष में रहने वाली महान् सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं से मिलान होकर के तुम्हारे शरीर द्वारा तुम्हारी आकाशवाणी मृत मण्डल में पहुँचा करेगी, इस अवस्था में तुम्हें कोई गुरु भी प्राप्त न होगा, यह इतना तुच्छ काल होगा जब तुम्हें कोई पाखण्डी कहेगा, कोई महान् और कोई किसी प्रकार से कहेगा,

यह कर्म तुम्हें भोगना पड़ेगा। यह विस्तृत प्रवचन आप तृतीय पुस्तक के अन्तिम प्रवचन "कुकर्मों की गति" नामक शीर्षक के प्रवचन में पढ़ सकते हैं। इन सब बातों से यह अनुभव होता है कि पूर्व जन्मों के अन्दर किये गये कर्म भी किस प्रकार से दूसरे-दूसरे जन्मों में भी भोगने पड़ते हैं।

अपने प्रवचनों में इन्होंने बतलाया है कि यह हमारी आकाश वाणी इसी प्रकार होती है जैसे कि भौतिकता में यन्त्र द्वारा वाणी का वायु मण्डल में प्रसार कर दिया जाता है और यन्त्र से सम्बन्धित यन्त्र उस वाणी को वायु मण्डल से लेकर प्रसारित कर देता है इसी प्रकार आध्यात्मिकता में, यौगिकता में हमारी आत्मा का उत्थान होकर अन्तरिक्ष में सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं से सत्संग होता है और आत्मा का तारतम्य इस शरीर से रहता है और उस सत्संग की वाणी का प्रसार इस शरीर से होने लगता है, शरीर उस समय एक यन्त्र बना होता है। इसी प्रकार प्रवचन के समय गर्दन का घूमना भी योग से सम्बन्धित बतलाया और यह कहा कि जब किसी भी योगी की आत्मा इस प्रकार से सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं से मिलान करने वाली बन जाती है तो उस समय शरीर में जो पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म प्राण होते हैं और जिनका तारतम्य उस आत्मा से रहता जो अन्तरिक्ष में और सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं से मिलान कर रही है, उनकी गति तीव्र हो जातीहै और शरीर की रक्षा करती जिसके कारण योगी के शरीर के किसी न किसी भाग में ऐसी कम्पन होनी स्वाभाविक है। अपने शरीर की चर्चा करते हुए बतलाया हमारे शरीर में कण्ठ से ऊपर के भाग में यह कम्पन होती है। यह भी इन्होंने साथ बतलाया कि सब

क्रियायें स्वभावतः पूर्व जन्म के अभ्यास से हो जाती हैं, यह सब भी आप ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों की चतुर्थ पुस्तक के अन्तिम प्रवचन "योग मुद्रा" शीर्षक नामक प्रवचन से पढ़ सकते हैं।

इन सब प्रवचनों से विदित होता है कि ब्रह्मचारी जी की यह सब प्रतिक्रियायें योग से सम्बन्धित हैं जो इस साधारण बुद्धि के विषय से दूर की चीजहैं। इस पर गम्भीरता से, गहन-अध्ययन से तथा योगियों के परामर्श से इन्हें विचार करना होगा।

इन सब प्रवचनों को इस स्थिति में सुनने के बाद साधारण जनों की ब्रह्मचारी जी के प्रति बड़ी भारी श्रद्धा हुई और होती है और उनके भाषणों को बड़ी शान्ति और गम्भीरता से सुनते हैं और सुनने पर उसमें जो एक विशेष आनन्द प्राप्त होता है वह अन्य भाषणों में नहीं होता और उनके प्रचार की संख्या बढ़ती चली जा रही है। इसपर हमारे समाज में अर्थात् जहां जन साधारण में इतनी श्रद्धा है वहां पर शिक्षित समाज और तार्किक जगत् इन दोनों के अन्दर ब्रह्मचारी जी के प्रति द्वेष भाव भी है यद्यपि कोई कारण नहीं कि उनसे या उनके भाषणों से, या उनके प्रचार कार्य से किसी प्रकार का द्वेष किया जाये क्योंकि वह किसी के प्रति भी द्वेष की भावना नहीं रखते और अपनी प्राचीन परम्परा के अनुकूल उनके भाषण होते हैं फिर भी कुछ लोगों ने उनके प्रति बड़ा भारी द्वेष प्रकट किया है, किसी ने उनको रोगी बतलाया, किसी ने उनको प्रलापी कहा और किसी ने उनको ढोंगी और पाखण्डी कहा, यह सब कुछ होते हुये भी और हमें ब्रह्मचारी जी से यहाँ तक पता चला कि जब उनका और हमारा अर्थात्

वैदिक अनुसन्धान समिति से सम्बन्ध नहीं बना था उस समय से पूर्व अनेक स्थानों पर ब्रह्मचारीजी की प्रवचन अवस्थामें खाट उलट दी गईं और उनको कई प्रकारके कष्ट दिये गये अपमानित किया गया, कई जगह से उनको दूर जाना पड़ा, यह सब कुछ हुआ परन्तु उनके भाषण तो होते ही थे, होते रहे हैं क्योंकि यह उनके अपने वश की बात नहीं कि वह अपने भाषणों को रोक सकें क्योंकि न तो वह जान बूझकर भाषण देते हैं और न उस समय उस स्थिति में उनको किसी प्रकार का ज्ञान रहता है परन्तु जैसा कि इस संस्करण की प्रथम भूमिका के अन्दर कुछ उनके विषय में वर्णन किया गया है कि यहां पर विनयनगर में जो वैदिक अनुसन्धान समिति बनी उससे पहिले उसका रूप ब्रह्मचारी कृष्णदत्त प्रवचन अनुसन्धान समिति था, उस समय यह समिति आर्य समाज विनय नगर के अन्तर्गत कार्य कर रही थी, और ब्रह्मचारी जी के प्रारम्भिक प्रवचन भी आर्य समाज विनयनगर के अन्दर ही हुए, उस समय अनेक दिल्ली की समाजों ने बड़ा भारी सहयोग दिया और सब ने ही इस बात प्रशंसा की कि यह प्रचार वैदिक धर्म का प्रचार है, इस प्रचार से पौराणिकता दूर होगी और जो लोगों के अन्दर अन्धविश्वास है, इस प्रकार की मान्यतायें हैं जिनसे मानव समाज पतन की ओर जा रहा हैं जिससे लोगों के अन्दर भ्रान्त धारणायें उत्पन्न हो रही हैं वे सब इनके प्रचार से दूर होंगी। ऐसी भावनायें जन साधारण लोगो की थीं, उस समय जो भी प्रवचन अनुसन्धान समिति के कार्यकर्ता थे उन्होंने कई बार दिल्ली भर की आर्य समाजों को निमन्त्रित किया और कुछ कार्यक्रम बनाया और कार्यक्रमों में ब्रह्मचारी जी के प्रवचन अनेक समाजों के अन्दर हुये और सबने ही उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की।

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी का सम्बन्ध प्रवचन अनुसन्धान समिति से जनवरी १९६२ में प्रारम्भ हुआ और यह निरन्तर चलता रहा। इसी बीच में नवम्बर १९६२ में उनके विरुद्ध कुछ साहित्य, निकाला गया और उसमें स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक नामक व्यक्ति ने जो कि अपने आपको बड़ा सिद्ध महात्मा और बड़ा भारी महान् पंडित समझते हैं, उस संन्यासी ने कभी ब्रह्मचारी कृष्णदत्त से दस मिनट भी बातें नहीं कीं, कभी उनका कोई प्रवचन नहीं सुना। सम्भव है कि कभी उन्होंने उनको देखा भी न हो परन्तु दूसरे विरोधियों के कहने पर और अपने किसी खास द्वेष या किसी बात के कारण या प्रसिद्धि प्राप्त करने के कारण उन्होंने उनपर लेखनी चलाई और उन्होंने "भ्रमनिवारण" नाम से कुछ लिखा, उस समय कुछ लोगों को बड़ा भारी दुःख हुआ कि एक व्यक्ति ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में जिसके विषय में अभी अनुसन्धान शेष है चाहे उसके सम्बन्ध में, या उसकी अन्य बातों के सम्बन्ध में कोई अनुसन्धान की बात भी न हो फिर भी वह व्यक्ति ऐतिहासिक दृष्टिकोण से धार्मिक दृष्टिकोण से, सामाजिक दृष्टिकोण से, वैदिक दृष्टिकोण से जो कुछ भी कह रहा है उसमें गम्भीरता से हमें सोचना आवश्यक है कि वह ऐसा क्यों कह रहा है, कहां से कह रहा है, किन कारणों से कह रहा है, जब तक हम उस बात पर विचार नहीं करते और उसके विरोध में लेखनी उठाते हैं तो मैं समझता हूं कि यह एक ऐसे पुरुष के प्रति और साथ ही साथ जनसाधरण के प्रति भी एक बड़ा अपराध है जिस अपराध के विषय में हम यह नहीं कह सकते कि उसके लिये क्या व्यवस्था की जा सकती है उस समय प्रवचन अनुसन्धान समिति ने कुछ उन बातों का निराकरण किया और अपनी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए उसका उत्तर

दिया परन्तु उसके बाद भी उस संन्यासी ने इस सम्बन्ध में और भी कुछ तीव्रता से इधर-उधर से धन एकत्रित करके उसका एक द्वितीय संस्करण छपवाया तथा अनेक विद्वानों की सम्मतियाँ दिलवाईं क्यों ऐसी नकल की क्योंकि ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों की पहली पुस्तक में अनेक विद्वानों की सम्मतियां थीं और उन सम्मतियों से ऐसा सिद्ध होता था कि ब्रह्मचारी जी का अधिक से अधिक प्रचार होगा तो उन्होंने भी उस प्रकार की सम्मतियां अपनी पुस्तक में छपवाईं, इससे एक हानि हुई कि बहुत से व्यक्ति जो ब्रह्मचारी जी को जानना चाहते थे, उस अनुसन्धान में सहयोग देना चाहते थे और इस विषय में कुछ विचार करना चाहते थे उस स्वामी जी की पुस्तक को पढ़ करके उनकी विचार धारा वहीं रुक गई और वह भी इसी प्रकार के हो गये कि जिस प्रकार किसी ने इस संन्यासी महोदय से कहा तो उसी प्रकार उन्होंने इस संन्यासी की पुस्तक पढ़ करके यह समझ लिया कि यह बिल्कुल तथ्य है और यह ढोंग और पाखण्ड है, ब्रह्मचारी कृष्णदत्त प्रवचन अनुसन्धान समिति पर कुछ और ऐसी ही बातें हुईं कि हमारी शिरोमणि सभा और औरों ने भी कुछ थोड़ा बहुत अंकुश लगाने का प्रयत्न किया और यह कहा कि यह सामाजिक क्षेत्र से अलग हो इसमें कार्य किया जाये, इन कारणों से कुछ समय के बाद जून १९६३ में इस समिति का वैदिक अनुसन्धान समिति का सम्बन्ध आर्य समाज विनय नगर से समाप्त हो करके स्वतन्त्र रूप से वैदिक अनुसन्धान समिति का संगठन किया और उसके बाद से इसकी चार पांच पुस्तकें अब निकल चुकी हैं, एक बहुत बड़ा यज्ञ किया गया जिसमें कि बहुत-बहुत दूर से देहाती क्षेत्रों के, शहरी क्षेत्रों के और दूसरे स्थानों से महानुभाव पधारे और उनको यह

अनुभव हुआ कि वेदों का यज्ञ इस प्रकार से किया जाता है। जिस यज्ञ में पांच यज्ञशालायें स्थापित की गईं और सात दिन तक निरन्तर वेदध्वनि होती रही और बराबर चारों वेदों का यज्ञ चलता रहा, इस प्रकार का यज्ञ दिल्ली के क्षेत्र के अन्दर एक नवीन चीज थी और जिसकी व्यवस्था से वह यज्ञ सम्पन्न हुआ जिस प्रकार से ब्रह्मा इत्यादियों ने इस यज्ञ को संचालित किया इस प्रकार से यहां के उन जनसाधारण में जोकि वेदों के प्रति आस्था नहीं रखते थे, जिनको वेद का जरा भी ज्ञान नहीं था उन लोगों ने भी जब यह यज्ञ देखा और इस सम्बन्ध में भाषण सुने और ब्रह्मचारी जी के निरन्तर प्रवचनों का मनन किया उनके मस्तिष्क में भी यह धारणा उत्पन्न हो गई कि आस्तिकता भी संसार के अन्दर कोई वस्तु है और वेद ही ऐसी चीज है कि जिसके स्वाध्याय से हम आस्तिक बन सकते हैं तो इस प्रकार से यह सब कार्य वैदिक अनुसन्धान समिति के द्वारा चलते रहे हैं इसके साथ ही कुछ लोगों को अब ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों से कोई विशेष आपत्ति नहीं रही। और अब वह यह समझने लगे कि इन प्रवचनों के द्वारा वैदिक मान्यताओं का प्रचार होता है और इनके द्वारा एक नवीन चेतना जागृत होती है परन्तु इस समय कुछ लोगो में जो एक भ्रांत धारणा या एक ऐसी शंका है वह यह है कि ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी जो प्रवचन के प्रारम्भ संस्कृत में बोलते हैं जिसको की इस पुस्तक के प्रारम्भ में भी संस्कृत तुल्य भाषा लिखा गया है और आज तक भी उस विषय में बहुत अधिक अनु-सन्धान नहीं हो सका है और ब्रह्मचारी जी अपने प्रवचन में उसे मन्त्र भाग कहते हैं और उसका गान व उच्चारण मन्त्रों के ही तरह होता है उस विषय में अभी बहुत से लोगों में कुछ

विवाद है, उस सम्बन्ध में भी आपकी सेवा में कुछ नम्र निवेदन करना आवश्यक है।

जिन लोगों ने वेदों का स्वाध्याय किया है और जो निरन्तर क्रम पाठ, पद पाठ, घन पाठ, जटा पाठ इत्यादि के द्वारा वेदों का गायन गाते हैं या साम गान और दूसरे दूसरे गान हैं उनके द्वारा जो वेदों का गायन होता है उसमें प्रायः स्पष्ट नहीं होते हैं और आप देखें कि मद्रास के पण्डित जब वेद-गान गाते हैं तो उस गान में से हम साधारण जन कुछ भी नहीं जान पाते क्योंकि क्रम पाठ में, पद पाठ में, घन पाठ में और जटा पाठ में मन्त्रों का रूप ही बदल जाता है जैसे क्रम पाठ में अ-ब-स-द यह चार अक्षर हैं तो जब क्रम से पाठ होगा तो अ-ब-ब-स अब-बस और अद इस प्रकार से यह क्रम पाठ का क्रम चलता है इसी तरह से 'अग्नि मीले पुरोहितम्' यह मन्त्र है इसको जब चारों क्रम, पद, जटा और घन पाठ में बोला जाता है तो इसका रूप बिल्कुल बदल जाता है। इसी प्रकार अन्य अनेक मन्त्र हैं जब वह गायन में आते हैं तो कहीं उनका स्वर, कहीं उनका अनुस्वार, कहीं उनका रूप क्योंकि गायन के अन्दर उनको तोड़ मरोड़ दिया जाता है जैसे आप साधारण गीत सुनते हैं उन गीतों में आपको विशेष आनन्द आता है लेकिन जब वही संगीत का पक्का राग बन जाता है तो वहां "सा रे गा मा पा धा नि सा" पर ही वह आलपी एक घण्टे तक आलाप करता रहता है और ऐसे तोड़ मरोड़ करके उस सा-रे गा-मा-पा धा-नि-सा को सामने रखता है कि उसके अन्दर जो पक्के राग के जानने वाले लोग हैं उन्हें ही आनन्द आता है और दूसरों को तो ऐसा मालूम पड़ता है कि यह बोतल के अन्दर कंकरे डाल कर के हिला रहा हो या जैसे

कोई वाद्य यन्त्रों से गान गा रहा है, उसकी भाषा कुछ भी समझ में नहीं आती तो साधारण व्यक्ति को तो उसका बिल्कुल ऐसा अनुभव होता है, इसी प्रकार से वेदों के गायन के सम्बन्ध में भी यह ही बात है कि जब कोई पक्के राग के ढंग से इसका आलाप करता है, उसका गायन करता है सप्त स्वर में गायन करता है, छन्दोबद्ध गायन करता है, छन्दों को तोड़ मरोड़ कर गायन करता है तो उसमें कुछ अन्तर आ जाते हैं तो यह इस कारण से हैं, दूसरे हमारे देश की अनेक भाषायें हैं अगर कोई विद्वान् हिन्दी भाषा में, प्राकृत भाषा में, तामिल,तेलगू, बंगाली, गुजराती, कोकड़ी इत्यादि दूसरी दूसरी भाषाओं के जानने वाला है तब वह यदि वेदों का स्वाध्याय करता है, उस भाषा का जानने वाला संस्कृत भी जानता है तो उसके उच्चारण के शब्द अपनी मातृ भाषा का रूप लेकर के कई बार देखा कि ग्रामीण पण्डित जो संस्कृत के बहुत अधिक अभ्यासी नहीं होते हैं, जिन्होंने संस्कृत का व्याकरण नहीं पढ़ा है, वैदिक व्याकरण नहीं पढ़ा है और वह साधारण पुरोहित देहातों में संस्कार आदि कराते हैं और जब हम उनके मंत्र पाठ को सुनते हैं तो हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि उनके मंत्र पाठ को अच्छे अच्छे जिन्होंने वेद व्याकरण का भी स्वाध्याय किया, जो वेदों के मंत्रों का ठीक उच्चारण भी कर सकते हैं वह भी उनके मंत्रों के अन्दर कुछ ही पदों को, कुछ ही शब्दों को समझ सकते हैं और वह उनको इस प्रकार तोड़ मरोड़ कर बोलते हैं कि कुछ समझ में नहीं आता इसी तरह से यह भी एक बात इसमें हो सकतीहै कि ब्रह्मचारी जी इस समय या अब से पूर्व जिस जीवन में रहे हैं;जिस देहाती क्षेत्र के अन्दर रहे हैं

वहां पर जिस प्रकार का उच्चारण होता है क्योंकि इन्होंने अपने प्रवचनों में यह बतलाया कि ब्रह्मा ने जहां हमें और बातों का शाप दिया वहां पर यह भी कहा कि उस समय जब तुम कलियुग के अन्दर जन्म ग्रहण करोगे तुम्हारी वाणी मेकड़ी वाणी हो जायेगी । मेकड़ी वाणी का अभिप्राय यह है कि वह इस तरह की वाणी होगी कि जो स्पष्ट नहीं होगी, वह बच्चों जैसी वाणी होगी और बालक के सामने अगर आप यह कोई भी मन्त्र या कोई भी शब्द रखते हैं तो वह उसको समझता तो अच्छीं प्रकार है और वह उसका उच्चारण भी बड़ी अच्छा करता है जैसे कि एक छोटा बालक कहता है कि पिताजी बलमचारी तो अपने आपको बलमचारी कहते हैं वह यह कह रहा है वह मन में सोच रहा है कि तू शुद्ध बोल रहा है और वह बारबार इसी बात को कह रहा है कि वह उन शब्दों का ही प्रयोग करता है जो अशुद्ध बोल रहे हैं और दूसरे की हंसी उड़ा रहा है, अपने आप भी बोलता हुआ दूसरे की अशुद्धि की हंसी उड़ा रहा है जब दूसरा अशुद्ध बोलता है तो वह यह समझता है कि इसका शुद्ध रूप नहीं है लेकिन जब वह अपने मुंह से बोलता है तो उसके मुंह से भी शुद्ध रूप नहीं निकलता लेकिन उसको यह समझता है कि यह शुद्ध रूप है तो जिस समय बालकपन की मति होती है तो इस समय उस तरह के बहुत से उच्चारण हो सकते हैं, साथ में इसमें एक बात यह भी हो सकती है कि हमारे जो शाखा ग्रन्थ हैं जो आज उपलब्ध नहीं हैं और जैसा कि ब्रह्मचारी जी ने अनेक अपने प्रवचनों में कहा है और अब तक भी बराबर कहते हैं कि हम शाखा ग्रन्थ से बोल रहे हैं अब यह हो सकता है कि उन शाखा ग्रन्थों के लिखने

वाले जो ऋषि मुनि हुए हैं उन्होंने भी मन्त्रों की व्याख्या के आधार पर हमारी यह जो चारों संहितायें हैं—ऋग्, यजु, साम, अथर्व इनमें से कुछ पद लिये और और कुछ पद लेने के बाद में उनकी वह व्याख्या के रूप में वह शाखाएं लिखीं और उस एक तरह से जो जो प्रकरण हमारे वेदों के आते हैं चाहे वह कर्म काण्ड के प्रकरण हैं चाहे वह और और प्रकरण हैं उपासना के हैं. आयुर्वेद के हैं इस तरह के जो प्रकरण हैं उन प्रकरणों में से उन्होंने कुछ सूक्त और कुछ थोड़े ऐसे अंश लिये और अंशों को ले ले करके उन्होंने शाखायें निर्मित कीं जैसा की ब्रह्मचारी जी ने भी एक बार अपने प्रवचन में कहा कि हमने शृङ्गि संहिता का निर्माण किया और उस शृङ्ग संहिता के अन्दर विशेष रूप से पुत्रेष्टि यज्ञ और पुत्र प्राप्ति के उपायों का वर्णन है, वेदों के अन्दर से वह मन्त्र भाग जहां जहां पर पुत्र लाभ के अंश आते हैं या जिन क्रियाओं से पुत्र प्राप्ति हो सकती है और उस अवस्था में जब नौ मास तक पुत्र गर्भ में रहता है उसके लिये लाभकारी होता है, हो सकता है शृङ्गि संहिता के अन्दर उन्होंने इस प्रकार का वर्णन किया और उन्होंने बतलाया कि अनेक ऋषियों के नाम से अनेक संहितायें विख्यात हैं इस प्रकार से हमारी ११२७ संहितायें हो सकती हैं जिनमें से आज बहुत थोड़ी उपलब्ध हैं तो उन संहिताओं का क्रम यह हो जिस क्रम में वह बोलते हों क्योंकि उनके बोलने के क्रमों के अन्दर अब तक के जितने वैदिक सनुसन्धान समिति ने टेप रिकार्ड किये हैं, उनके अन्दर अन्तर रहता है। आप महानुभावों के सामने कुछ थोड़े से मन्त्रों का प्रकाशन किया गया है वह भी कुछ समय बाद जनता के सामने पहुंचेगा उसको देखने से अनुभव होता है कि उन्होंने एक एक पद को ले करके कुछ

आगे उसी रूप में चलते चले गये हैं और इस तरह की कुछ बातें हुईं तो इस तरह से यह उनके मन्त्रों के विषय का जो अनुसन्धान है यह अभी चल रहा है और इसमें कुछ प्रयत्न किया जायेगा कि सही रूप इसका पता चल जाये और ऐसा अनुमान भी है सम्भव है भगवान् की कृपा से कुछ दिनों के बाद ब्रह्मचारी जी महाराज स्वयं ही इस तरह के उच्चारण करने लगें जो बिलकुल ही शुद्ध रूप में हो और चारों वेदों के मन्त्रों का भी सही रूप से उनके द्वारा उच्चारण हो सके, अब भी अनेक मन्त्रों के कुछ भाग उनके भाषणों में आते हैं जो शुद्ध रूप होता है तो इस तरह से हम प्रयत्न कर रहे हैं कि यह विषय आगे चलता चला जाये। अनेक शंकायें उनके जीवन के सम्बन्ध में हैं किन्तु हम स्पष्ट रूप से आपके सामने यह रखते हैं कि जहां तक ब्रह्मचारी जी का निजी जीवन है वह जीवन इतना पवित्र है कि उसके अन्दर किसी प्रकार की कोई भी इच्छा उनको नहीं है क्योंकि उनका खान पान इतना नियमित है कि कहीं उसमें मिर्च मसाले आदि इस प्रकार की कोई चीज नहीं, उनका रहन सहन यदि आज के युग में और इस छोटी सी अवस्था में हर एक व्यक्ति यह चहाता है कि मैं अच्छे से अच्छा खाऊं और अच्छे से अच्छा पहनूं लेकिन उनका बिल्कुल वैसा ही रहन-सहन, खान पान है कि जो एक प्रकार से महात्माओं या इस तरह के एक विरक्त से व्यक्तियों का होता है तो इस तरह हम उनको ले करके कुछ आगे चल रहे हैं और उनके प्रवचनों से लाभ हो रहा है। आप महानुभावों के उत्साह से यह समिति निरन्तर आगे बढ़ती रहेगी, आपका सहयोग इसे प्राप्त होता रहेगा। इस प्रवचन पुस्तक को दुबारा छपवाने में जो भी प्रयत्न किये गये हैं शीघ्र से शीघ्र

प्रयत्न किये गये हैं कि जिससे यह आपको मिले यदि इतना ही इस प्रकार का उत्साह रहेगा तो अगली पुस्तकें भी आपकी सेवा में शीघ्र ही पहुँचेंगी।

ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों के सम्बन्ध में कुछ विशेष बातें भी हमारे सामने आई हैं और हमने उसके ऊपर अनुभव भी किया है जिस समय प्रारम्भ में २६ दिसम्बर १६६२ को ब्रह्मचारी जी का प्रथम प्रवचन हुआ उसके बाद में मुझे बाहर से एक महानुभाव का पत्र मिला जिसमें उन्होंने लिखा था कि जो कुछ भी विशेष घटनाओं की जानकारी आप जानना चाहें वह केवल ब्रह्मचारी जी के सामने दिन में किसी समय जब यह शान्त चित्त हों वह प्रश्न इनके समक्ष कर दें और उन प्रश्नों को रखने के बाद में आप देखेंगे कि किसी भी दिन प्रवचन काल में उन प्रश्नों के बहुत सारगर्भित उत्तर आपको मिलेंगे। अनेक व्यक्ति ने इस सम्बन्ध में यहां तक भी हमारे पास लोगों की सूचनायें मिली हैं कि अगर किसी ने उनके प्रवचन समय में मन में भी किसी प्रकार के प्रश्न किये हैं और उन्होंने चाहा कि हमें इस बात का स्पष्टीकरण मिलना चाहिये तो प्रायः वह उत्तर अथवा स्पष्टीकरण मिले भी हैं। इसके साथ ही कुछ नये विषय भी वृक्षों में जीव है या नहीं यह एक बहुत ही गम्भीर विषय है मानव समाज के सामने, किसी ने इनसे प्रश्न किया और ब्रह्मचारी जी ने अपने प्रवचन में वृक्षों में जीव नहीं है इस बात को सिद्ध किया और बड़ा ही तर्क संगत वह इनका प्रवचन है, इस तरह से और भी अनेक प्रश्न जो भी इनके समक्ष रक्खे जाते हैं उनके उत्तर वह प्रवचन काल में प्राप्त होते रहते हैं। यह एक बहुत बड़ी विशेषता है कि एक व्यक्ति बिना पढ़ा लिखा और वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल इन सब चीजों का उत्तर देते हैं। कुछ व्यक्ति परमात्मा को सृष्टि कर्त्ता नहीं मानते और यह कहते हैं

कि यह तो एक स्वाभाविक कार्य है जो कि होता ही रहता है इसमें परमात्मा का कोई हाथ नहीं, मानव के जीवन मरण के प्रश्न में भी ऐसी ही आशंका है, और कहते हैं कि यह तो प्राकृतिक कार्य है और अनेक जितनी भी ऐसी स्थितियां हैं जो प्राकृतिक रूप से चल रही हैं उनमें भी वह कहते हैं कि यह सब स्वयं होता है और स्वयं ही नष्ट होता है, स्वयं ही निर्माण होता है लेकिन ब्रह्मचारी जी ने अपने प्रवचन में जो भविष्य की पुस्तकों में आयेगा सृष्टि निर्माण में परमात्मा का क्या सहयोग है और क्यों सृष्टि का निर्माण परमात्मा ने किया, परमात्मा सृष्टि का कर्त्ता है या अकर्त्ता है इन प्रश्नों के उत्तर भी आये हैं और बड़े गम्भीरता पूर्वक वह उत्तर दिये गये हैं। तो इस प्रकार से यह ऐसा विषय है, ऐसी एक बात है जिससे बहुत कुछ समस्यायें सुलझ सकती हैं और हम निरन्तर इस प्रयत्न में हैं कि ब्रह्मचारी जी का संसर्ग कुछ ऐसे स्वाध्याय शील व्यक्तियों से होता रहे और उनके द्वारा गम्भीर प्रश्न चलते रहें कि जिनके स्पष्टीकरण से आज बहुत से लोगों के मतों से भिन्नता होते हुए भी वह तार्किक दृष्टि से और वास्तविक स्थिति में आ करके वह उनके उतर हमें प्राप्त हो जाते हैं तो इस प्रकार से हम अगले भविष्य में जो आने वाली और पुस्तकें हैं उनके प्रारम्भ में भी कुछ इस तरह की बातें जो अब इसमें स्थानाभाव के कारण हम नहीं रख सके हैं वह आगे रखेंगे, जनता प्रतीक्षा करे। अन्त में अपने परम सहयोगी श्री ला० बैजनाथ जी सहगल तथा श्री चन्द्र प्रकाश जी गुप्त जो कि दिन रात एक मन होकर निः स्वार्थ भाव से समिति के कार्य तथा प्रकाशन के लिए सहयोग दे रहे हैं, हृदय से धन्यवाद करता हूँ। शीघ्र ही ५वां प्रकाशन प्रस्तुत करेंगे। **देवप्रकाश शर्मा**

संयोजक, वैदिक अनुसंधान समिति

फरवरी १९६५

❀ ओ३म् ❀

सृष्टि-रचना का उद्देश्य

आत्मा-परमात्मा का स्वरूप एवं सम्बन्ध

भोगवाद में लिप्त आज के मानव को इस प्रवचन में "आत्मा और परमात्मा के स्वरूप एवं सम्बन्ध कैसे हैं ? आत्मा ब्रह्म कैसे बनता है ? और परब्रह्म से सदा भिन्न रहता है। परमात्मा को कैसे पाना है ? क्या परमात्मा खेल खेल रहा है ? भगवान् ने सृष्टि रचना क्यों की है ? भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए जीवन-विभाग करके जीवन को कैसे सफल बनाएं ?" विषय पाठकों को अध्ययन करने के लिए मिलेंगे।

[सम्पादक]

स्थान—लोधी रोड, नई दिल्ली
दिनांक १ अप्रैल, सन् १९६२ ई०

देखो मुनिवरो ! अभी-अभी हमारा पर्ययण (वेद के अवलोकन का अर्थात् पाठ का) समय समाप्त हुआ। हम तुम्हारे समक्ष वेदों का मनोहर गान गा रहे थे। यह तो तुम्हें वेद मन्त्रों के पाठ से प्रतीत हो गया होगा। कल के समान आज भी 'जटा' पाठ के अनुसार वेद मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। जैसा कि हम पूर्व स्थान में कह चुके हैं कि वेदों का गायन अनेक प्रकार से होता है।

आज वेदों का गान गाते समय हृदय में बड़ी मनमन्ता (मनमत्ता, अति प्रसन्नता) उत्पन्न हो रही थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे वह विधाता हमारी रसना में और हमारे कण्ठ में विराजमान होकर के हमें उत्साह दे रहा है कि मेरी

वाणी (वेद-वाणी) का और अच्छी प्रकार से प्रसार करो। जिससे कि मेरी वाणी (वेद-वाणी) सर्वत्र ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत होकर इस अन्तरिक्ष को, इस भूमण्डल को पवित्र कर दे। अर्थात् यह सारा संसार पवित्र हो जाय। क्या करें समय का अभाव है। आज हमारी इच्छा तो यह थी कि उच्च स्वर से और अधिक वेदों का गान किया जाय जिससे कि अन्तरिक्ष में वेदों के मन्त्रों का रमण हो करके वातावरण अच्छी तरह शुद्ध हो जाय।

यह ब्रह्माण्ड, यह सारी सृष्टि, आपकी बनाई हुई है। हमारी रसना में आपका ही बल दिया हुआ है, हमारे कण्ठ में भी आप विराजमान हैं, आपकी ही कृपा से आपकी ही सत्ता से हम वेद मन्त्रों का गान कर पाते हैं। आपकी वाणी (वेद-वाणी) कहती है कि यह वायु मण्डल, यह अन्तरिक्ष वेद मन्त्रों से ही शब्दायमान हो करके शुद्ध हो जाता है। यह आपकी बड़ी मनोहरता है।

हमारे आनन में एक वार्ता नहीं आ रही है कि आपका बनाया हुआ संसार क्या पदार्थ है ? इसको क्या आपने रचाया है ? और यह क्यों रचाया है ? और कौन २ से पदार्थों से आपने यह संसार बनाया है ?

आत्मा परमात्मा का स्वरूप

अहा आज परमात्मा से निवेदन करें, परमात्मा से उच्चारण करें कि हे परमात्मन् ! आपके बनाये हुए संसार में आज प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या (नारी) दुःखित होती चली जा रही है, एक मानव दूसरे मानव पर घात लगाये बैठा है। परन्तु वेद वाणी तो कहती है कि परमात्मा ने संसार को मनोहर

उत्पन्न किया है। वेद वाणी के उच्चारण से इस विशाल वायु मण्डल को शुद्ध किया जाय जिससे कि मानव के अन्तःकरण में शुद्ध भावनाएं आयें।

कुछ मानव कहते हैं और महानन्द जी का संकेत भी बारम्बार आता है कि आज का मानव अपने को परमात्मा का रूप मानता है।

परन्तु हे विधाता ! यदि आप ही यह आत्मा (जीव) हैं या यही (आत्मा ही) परमात्मा है तो आपके बनाये हुए संसार में (ये जीव) एक दूसरे के रक्त के अभिलाषी क्यों बन बैठे हैं? यह क्या ऐसा आपका बनाया हुआ ब्रह्माण्ड है, जिसमें मानव दुःखित होता चला जा रहा है ? मानव में परस्पर (महती) शत्रुता क्यों है ? इस प्रकार का यह संसार क्यों है ? यह तो बड़ा विचारणीय प्रश्न है।

बेटा ! एक समय महर्षि अटुल मुनि महाराज, देवर्षि नारद, सनत् कुमार आदि आचार्य, लोमश मुनि महाराज, विभाण्डक ऋषि महाराज, महर्षि पारा मुनि और उनके पुत्र धुन्ध ऋषि महाराज आप्त ऋषियों और महान् दार्शनिकों के समाज में विचार चल रहा था कि यह परमात्मा का बनाया हुआ संसार तो है, परन्तु यह इस प्रकार का क्यों है ? इस प्रकार के संसार में परमात्मा का क्या महत्व है ? हम परमात्मा को क्या मानें ? स्वयं परमात्मा क्या पदार्थ है ? यदि यह आत्मा ही परमात्मा है तो एक मानव दूसरे का शत्रु क्यों बना बैठा है ? और कौन किसका राजा बना बैठा है ? कौन किसकी प्रजा बनी बैठी है ? आज का मानव इस पर दार्शनिक दृष्टि से विचार करता है। परन्तु हम तो वेदोक्त मन्त्रों के आधार पर विचार करते हैं।

परमात्मा ने इतने बड़े ब्रह्माण्ड को इस प्रकृति से बनाया

है। अहा ! उस परमात्मा ने ब्रह्मत्व से इस संसार को उत्पन्न किया है। जैसे ब्रह्मा (यज्ञ का) नाना प्रकार से सुन्दर वेदी को रच देता है, वेदों को रच कर वेद मन्त्रों के द्वारा सब कुछ सिद्ध करके देवों (भौतिक) तथा देवों (विद्वान् होता, उद्गाता, अध्वर्यु आदि) की स्थापना करके मानो यज्ञ वेदी को उत्पन्न कर देता है। अरे ! अब हमारे समक्ष वेदी के दो रूप उपस्थित हो जाते हैं एक भौतिक वेदी; दूसरी आध्यात्मिक वेदी। देखो भौतिक वेदी हमको आध्यात्मिक यज्ञ में पहुंचा देती है।

देखो हमारे अन्तःकरण में भी यज्ञशाला विराजमान है। उसमें मानो आत्मा आहुति देने वाला है। परमात्मा सामग्री देने वाला है और मुनिवरो ! परमात्मा ब्रह्मा बन करके आत्मा को प्रेरणा देकर के और ऊंचे पथ पर चला रहा है और इसी प्रकार से संसार को भी चला रहा है।

देव मुनि नारद ने कहा कि प्रश्न तो यह था कि जो परमात्मा इस संसार में ओत-प्रोत है, लोक-लोकान्तरों को उत्पन्न कर रहा है। जिसकी सृष्टि का कोई अन्त नहीं पाता, इस पर यदि यह परमात्मा का अंश है तो परमात्मा के बनाये अनन्त संसार को, अनन्त ब्रह्मण्ड को क्यों नहीं जान पाता ? मुनिवरो ! देखो यह पृथ्वी-मण्डल है, पृथ्वी-मण्डल के ऊपर बुध मण्डल है, बुध मण्डल के ऊपर मंगल है, मंगल से ऊपर अनेक चन्द्राशि आदि लोक हैं। इस विशाल विश्व में नाना सूर्य मण्डल हैं, नाना चन्द्र मण्डल हैं, अगस्त मुनि-मण्डल, वसिष्ठ मुनि-मण्डल, अरुण-मण्डल और नाना मण्डल ध्रुव लोक, बृहस्पति लोक, अचङ्ग लोक, मचङ्ग लोक, भूः भुवः और स्वः आदि लोक-लोकान्तर परमात्मा के बनाये हुए हैं। अहो देखो, यह परमात्मा की कैसी मनोहरता है ? यदि यह आत्मा परमात्मा का ही अंश

है तो यह क्यों नहीं इस परमात्मा की बनाई सृष्टि का अन्त पा लेता ? इस पर आत्मा को परमात्मा का अंश मानने वाले यह समाधान देते हैं कि यह आत्मा जब परमात्मा का दर्शन करके परमात्मा बन जाता है तब वह इन सबका प्रत्यक्ष कर ही लेता है।

उस दार्शनिक महर्षियों के समाज में पारा ऋषि ने कहा कि यह आत्मा किसके दर्शन करता है ? उस परमात्मा के दर्शन करता है। उसके दर्शन से आत्मा ब्रह्म तो अवश्य बन जाता है। यह तो सत्य है कि परब्रह्म को पाकर ब्रह्म बन जाता है। इसमें कोई संकोच नहीं। यह एक विचारणीय विषय है। देखो, जब मानव की स्मरण शक्ति ऊंची होती है, योगी बन कर आत्म-दर्शन करके परमात्मा के दर्शन की स्थिति में पहुंच जाता है। परन्तु वह ब्रह्म पद पर पहुंची आत्मा परब्रह्म कदापि नहीं बन पाती, कदापि नहीं बनेगी। महान् दार्शनिक महर्षि अदुल मुनि, महर्षि उद्दालक मुनि, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि, अष्टावक्र आचार्य आदिकों का यही अटल निश्चय है।

एक बार राजर्षि जनक महाराज ने भी आचार्य अष्टावक्र से याज्ञवल्क्य के वाक्यों का प्रमाण देते हुए यही प्रश्न किया था। मुनिवरो ! उस समय आचार्य अष्टावक्र ने यही कहा था कि आत्मा परब्रह्म का साक्षात्कार करके ब्रह्म तो बन जाता है परन्तु परब्रह्म कदापि नहीं बनता। याज्ञवल्क्य महाराज के उपदेश को आपने ठीक-ठीक समझा नहीं। महर्षि याज्ञवल्क्य ने तो कहा था कि प्रभु ने संसार को रचा है। यह संसार गणों में विभक्त है। इस संसार से वह गणनीय है। वह हमारा स्वामी है। हम उसके आश्रित हैं। उसी ने संसार को उत्पन्न किया है। उसको पाकर के आत्मा ब्रह्म बन जाता है, परन्तु परब्रह्म कदापि नहीं बनता।

बेटा ! यह एक आचार्य का आदेश नहीं, यह तो सब आचार्यों का आदेश है। बेटा, हमने अपने गुरु ब्रह्मा जी से कहा था कि महाराज ! हम यह जानना चाहते हैं कि यह ब्रह्म क्या पदार्थ है। क्योंकि आपने तो व्याकरणादि सहित चारों वेदों का स्वाध्याय किया है। आप एक-एक अक्षर के कई-कई प्रकार से अनुवाद करने वाले हैं।

मुनिवरो ! उस समय गुरु ब्रह्मा जी ने कहा कि जैसे माता का और पुत्र का, पिता का और पुत्र का सम्बन्ध होता है वैसे ही आत्मा—परमात्मा का सम्बन्ध माना गया है।

हे मुनिवरो ! एक समय हमारे महानन्द जी ने कहा कि परमात्मा ब्रह्मा की शक्ति बनकर संसार को उत्पन्न करता है। उनके ऐसे प्रश्नों का समाधान पूर्व समय में कर चुके हैं। परन्तु महानन्द जी के अधिक आग्रह के कारण इसका समाधान पुनः इस प्रकार से उपस्थित करते हैं।

परमात्मा को ही ब्रह्मा कहते हैं। परमात्मा स्वयं ही सृष्टि की स्थापना करता है। प्रश्न होता है कि कैसे बनाता है। किस पदार्थ से बनाता है ?

मुनिवरो ! देखो जैसे यज्ञ का ब्रह्मा यज्ञशाला में विराजमान होकर अपने स्वयं के शरीर से भिन्न द्रव्यों का आयोजन यज्ञ के लिये करता है और कराता है, यज्ञ वेदी को रचाता है तो यजमान उससे भिन्न होते हैं। इसी प्रकार से मूल प्रकृति को महत्व प्रदान करके सृष्टि उत्पन्न करता है। यह प्रकृति प्रलय काल में अव्यक्त रूप (शून्य रूप) थी। उसी सूक्ष्म प्रकृति को महत्व रूप में परिवर्तित करके, इसमें प्राण प्रदान करके, इसमें क्रिया पैदा करके तन्मात्राओं को पैदा करता है। तन्मात्राओं से

पंचभूत, बेटा ! पंचभूतों से यह संसार बन गया है। बेटा ! देखो, उस महान् परमात्मा ने उस सूक्ष्म और महान् प्रकृति से संसार को बनाया। हमारे शरीरों को बनाया। इसमें अहंकार हैं, नाना प्रकार के विषय सूक्ष्म रूप से हैं।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि परमात्मा ने यह सब किसके लिये बनाया ? शून्य (अव्यक्त) प्रकृति को इस प्रकार चेतन में लाने को परमात्मा को क्यों आवश्यकता पड़ी ? क्योंकि परमात्मा तो पूर्ण हैं। निर्द्वन्द्व हैं। परमात्मा को स्वयं संसार में आने की क्या आवश्यकता है ? और संसार को क्यों बनाने की आवश्यकता है ?

मुनिवरो ! जैसे माता अपनी लोरियों में बालक को जीवन दान करती है, उसी प्रकार हम आत्माओं के लिये परमात्मा ने इस सृष्टि को उत्पन्न किया है। प्रलय के समय यह सारी सृष्टि और सारे जीव उस परमात्मा के गर्भ में हो जाते हैं।

महानन्द जी ने अनेक बार कहा कि जैसे समुद्र का जल ही नदी, नद, तालाब और सरोवरों आदि में पड़ कर भिन्न भिन्न आकर एवं रूप धारण कर लेता है तथा उन सब जलाशयों में एक सूर्य का ही अनेक रूप में प्रतिबिम्ब पड़ता है। ऐसे ही परमात्मा के ही ये सब रूप एवं अंश हैं।

पर महानन्द जी आप निराकार परमात्मा के लिये साकार पदार्थों का; बने हुए पदार्थों का (परिणामी पदार्थों का) कैसे उदाहरण देते हैं ? अरे बेटा ! परमात्मा तो निराकार है (अपरिणामी) है। किसी निराकार का और अपरिणामी पदार्थ की युक्ति देते तो सुन्दर होता। बुद्धिसंगत होता। परमात्मा सदा अपरिवर्तन शील है। उसके लिए परिवर्तन शील का उदाहरण

कैसा ? और क्यों ? ये उदाहरण तो परमात्मा पर कदापि घटते ही नहीं।

हे मुनिवरो ! परमात्मा को प्रत्यक्ष और साक्षात्कार करने से पहले अपनी आत्मा को अच्छी प्रकार से समझो, जानो। और अपनी आत्मा में उस परब्रह्म को पा लो। तब यह आत्मा भी परब्रह्म को पाकर ब्रह्म बन जायगा, पर परब्रह्म कदापि नहीं बनेगा। यह अद्वितीय परब्रह्म कभी नहीं बनेगा। नहीं तो, यह आत्मा अपने कर्मों के चक्रों में फिरता ही रहेगा।

मुनिवरो ! हमारे व्याख्यान का आरम्भ तो 'परमात्मा ने सृष्टि को क्यों उत्पन्न किया ? किसके लिये किया ? क्यों ऐसा दुःख भरा संसार परमात्मा ने उत्पन्न किया ?

महानन्द जी ने एक समय कहा था कि—"यह तो परमात्मा खेल खेल रहा है।

अच्छा मुनिवरो ! जरा विचार कीजिए, कि खेल कौन खेला करता है। खेल वही खेला करता है, जो अज्ञानी होता है। मुनिवरो ! देखो, जैसे एक माता का बहुत छोटा सा पुत्र है, वह पुत्र तभी तक नाना प्रकार के खेल खेलता है जब तक बाल्यावस्था रहेगी, अज्ञानता रहेगी, और जब उसे वेदों का ज्ञान हो जायगा, महान् ज्ञान हो जायगा, वह परम पद की इच्छा में मग्न हो जायगा, वह महान् बन जायगा। इस प्रकार से तो तुम्हारे कथनानुसार परमात्मा भी अज्ञानी हो जायगा। जबकि परमात्मा तो ज्ञानियों का भी ज्ञानी है। परमात्मा तो हर प्रकार से पूर्ण है। खेल तो अपूर्ण खेला करता है।

देखो, महान् ! मुनिवरों ! हममें अपूर्णता है। हममें सीमितता है। इस काल कोठरी में, इस अजिर में, इस शरीर में आए

हुए है। हमारा ज्ञान सीमित है, हमारा विज्ञान सीमित है, हमारे जो कार्य हैं वे भी सीमित हैं। हमारे नियम भी सीमित हैं अर्थात् हमारे सारे कार्य सीमित हैं।

अहा परमात्मा को देखो, वह पूर्ण है, उसकी विद्या असीमित है। वह महान् बुद्धिमान् है, वह हर प्रकार से पूर्ण, विद्या में पूर्ण, सृष्टि रचना में पूर्ण, हमारे कर्मों के फल देने में पूर्ण अर्थात वह परमात्मा हर प्रकार से पूर्ण है। इसलिए परमात्मा कदापि खेल नहीं बनाता। इसलिए हमको मान लेना चाहिए कि परमात्मा हमारे लिए सृष्टि को उत्पन्न करता है और हम उसमें कर्म करने के लिए उद्यत हो रहे हैं।

महानन्द जी बार बार कहा करते हैं कि आजकल के सभी आचार्य मानते हैं कि "आत्मा और परमात्मा एक ही पदार्थ हैं।" (इसके विपरीत) आप इसको ऐसा (अर्थात् भिन्न भिन्न) मान रहे हैं। पर महान् ! यह हमारा ही व्याख्यान नहीं, यह हमारा ही आदेश नहीं। हम तो इस काल को, इस समय को, इस महान् समय को बहुत समय से देखते चले आ रहे हैं। अहा ! हमने तो यह विचार दार्शनिकों से पाया है। मुनिवरो ! आदि दार्शनिकों का यही सिद्धान्त है। यही मानते चले आए हैं। बेटा ! जो इससे भिन्न मानेगा वह (परस्पर) एक दूसरे को दोषी बनाएगा।

तो गुरु जी ! आधुनिक काल में ऐसा मानते हैं कि आत्मा परमात्मा एक ही पदार्थ है। आपने तो इनको भिन्नता दे दी है। भगवन् ! एक नहीं आधुनिक काल के तो बहुत से (आचार्य) कुछ ऐसा ही कहते हैं। (केवल) आधुनिक काल के ही नहीं (अपितु) महर्षि व्यास मुनि जी ने भी ऐसा ही कहा है कि "यह

आत्मा ही परमात्मा बन जाता है।" (अर्थात्) जब यह आत्मा परिश्रम करके अपने को पा लेता है तो (इसका) अपने को पाना ही ब्रह्म को पाना है। यह अपने आप (स्वतः) ब्रह्म है। (इसके अतिरिक्त) और कोई ब्रह्म नहीं है। और न कोई कुछ है।

तो महानन्द जी ! यह महर्षि व्यास मुनि ने कहा है क्या ?

हाँ ! भगवन् ! ऐसा ही कहते हैं।

अरे ! कहते हैं या तुम मान रहे हो ऐसा ? कौन कहता है ? तुम्हीं तो उच्चारण कर रहे हो या और कोई कह रहा है ? नहीं भगवन् ! आधुनिक काल के कुछ ब्रह्म वेत्ता और ब्रह्म निष्ठ ऐसा माना करते हैं।

तो महानन्द जी ! इससे तो हमें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे तुम भी ब्रह्मनिष्ठ बन गये हो।

नहीं, भगवन् ! हम तो ब्रह्म निष्ठ नहीं बन रहे हैं। हमारा तो केवल आपसे एक प्रश्न है।

अच्छा, महानन्द जी ! इसका तो संक्षेप में उत्तर यह है कि महर्षि व्यास मुनि ने ऐसा नहीं माना। महर्षि व्यास मुनि ने तो ऐसा माना है और वेदान्त में अपनी बहुत कुछ बुद्धि के द्वारा जाना और विज्ञान के द्वारा भी उन्होंने जाना और उन्होंने आध्यात्मिक विज्ञान पर बल दिया तो महर्षि व्यास ने ऐसा कहा है। बेटा ! जो हमने महर्षि व्यास के वचनों को पाया और व्यास मुनि से पाया और उन्होंने तो ऐसा कहा है कि यह आत्मा अपने को जब पा लेता है तो अपने को पाकर के परब्रह्म को पा लेता है और परब्रह्म को पाकर के यह आत्मा ब्रह्म बन जाता है।

बेटा ! तो हम तुम्हारे वाक्यों को सत्य मानें या व्यास मुनि के ?

गुरु जी! जिसकी आप कल भी व्याख्या कर रहे थे। (कि) महाराजा कृष्ण ने भी अर्जुन को बार बार ऐसा कहा है कि तुम मुझे पाओ और मेरे अर्पण कर दो और मुझे जो पा लेता है वह मेरे में ही रमण कर जाता है। तो यह कैसे? और आपने कल भी इसकी व्याख्या की और आप व्यास मुनि के वाक्यों को तो ऐसा कहते हैं तो महाराजा कृष्ण के वाक्यों को क्या कहेंगे?

महानन्द जी! बेटा! तुम इस वार्ता को जान तो पाते नहीं, वैसे ही प्रश्न कर देते हो। महाराजा कृष्ण ने अर्जुन से कई स्थानों में ऐसा कहा है कि हे अर्जुन! अपने जन्म-जन्मान्तरों की बहुत सी वार्ताओं को मैं जानता हूँ और तू नहीं जानता। बेटा! यह तो तुम जान गए होगे। हमारे कथनानुसार भी और हमारी स्थिति को जानकर के भी तुम्हें यह जानना ही होगा कि ये जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार मानव को कहां तक ले जाते हैं। तो महानन्द जी! इससे हमें ज्ञात होगा कि महाराजा कृष्ण ने केवल एक ही गान गाया जो हम कल उच्चारण कर रहे थे। गान तो हमने गाकर वर्णन नहीं किया पर उन्होंने यही गान गाया कि देखो मैं जानता हूं और तू नहीं जानता, यह आत्मा अमर है, अजर अविनाशी है, विभु (स्थिर, सर्वत्र गतिशील) है।

देखो! यह परमात्मा महान् है, यह न कदापि जन्मता है और न कदापि नष्ट होता है। महान्! देखो, यह भी है, तू मेरे अर्पण कर।

तो मुनिवरो देखो, यह यहां गुरु शिष्य का भाव आ जाता है। जब गुरु को शिष्य का अज्ञान समाप्त करना होता है, अज्ञान नष्ट करना होता है तो ज्ञानी गुरु अज्ञानी शिष्य से कहता है कि "हे अज्ञानी! तेरे में जो अज्ञानता है वह मुझे दे, उसे तू

मुझे अर्पण करदे और हर प्रकार से तू मुझे ही मान। और महान्! जब तू मुझे मान जायगा और अच्छी प्रकार जान जायगा। महान्! देखो, जब तू ज्ञानी (गुरु) को अच्छी प्रकार जानेगा तो उस समय ज्ञानियों के भी ज्ञानी (गुरु) उस पूर्णज्ञानी परमात्मा को पाकर के महान् ज्ञानी बन जायगा।" तो बेटा! ऐसा उन्होंने (महाराजा कृष्ण ने) कहा है। तो हम क्या कहें? बेटा! हम तुम्हारे वाक्यों को क्या कहें? हमारा यह आदेश है। हमने यह पाया है। और यही उनसे सुना है। वह (ही) तुम्हारे समक्ष नियुक्त कर दिया है। बेटा! आगे जो (जैसी) तुम्हारी इच्छा हो वह (वैसा) मानते रहो! इसमें हमारी कोई हानि नहीं है।

नास्तिकता से पतन

गुरु जी! इसमें हानि का तो कोई प्रश्न ही नहीं आता, भगवन्! हम परमात्मा को न मानें तो भी इसमें हमारी क्या हानि होती है! हिं, हिं, हिं।

हाँ! यह तो तुम्हारा वाक्य सत्य है। यदि तुम परमात्मा को न मानो तभी तुम्हारी क्या हानि है? बेटा! इसमें तो बहुत बड़ी हानि हो जायगी।

भगवन्! क्या हानि हो जायगी?

हानि यह हो जायगी कि जो इतने बड़े ज्ञानी को नहीं मानता, जो इतने बड़े पूर्ण ज्ञानी को नहीं मानता, जिसने हमारे शरीर को बनाया, जिसने हमें नाना प्रकार के आहार करने के पदार्थ दिये, जिसने तत्व दिये हैं, आज यदि हम उस प्रभु का आदर नहीं करेंगे या उसको नहीं मानेंगे तो बेटा! हमसा धूर्त्त संसार में कौन होगा? महानन्द जी! तो इस

लिए तुममें धूर्त्तता आ जायगी और तुम अपने को खो बैठोगे। और महान् ! तुम्हारा सभी ज्ञान समाप्त हो जायगा।

प्रभु विश्वास से लाभ

गुरु जी ! तो, यदि हम परमात्मा को मानेंगे तो हमारा ज्ञान सुरक्षित रहेगा। यदि परमात्मा को न मानें तो हमारा ज्ञान समाप्त हो जायेगा ? हिं, हिं, हिं···(हास्य)

"हाँ बेटा ! हमारा तो ऐसा ही निर्णय किया गया है।"

"तो जो आप निर्णय करदें क्या वही सत्य हो सकता है ?"

अरे ! इसका यह अभिप्राय तो नहीं जो तुम उच्चारण कर रहे हो। हम जो (अपने) उच्चारण में निर्णय दे देते हैं वह सत्यता (पर आधृत) है। भाई ! देखो, परमात्मा को मानने से हमारी आत्मा में बल आता है। देखो, किसी बली को प्रसन्न करने से, किसी बली के गुण (गान से अपने जीवन में कार्य रूप में परिणत करने से) आ जाने से हम में बल आता है। किसी दुर्बल मनुष्य को या किसी हीन मानव को प्रसन्न करोगे और उसके गुण अपने में धारण करोगे तो बेटा ! हममें दुर्बलता आएगी और जो ज्ञानियों के ज्ञानी को, उसके ज्ञान को अपने में धारण करोगे तो हममें ज्ञान आता चला जायगा। हम महान् से महान् बन सकते हैं। यह तो तुम मानते हो कि जो जिसके निकट जाता है उसके परमाणु उसमें आ जाते हैं। उसके जितने परमाणु आते जायेंगे उसकी उन जैसी और उतनी प्रकृति भी बनती चली जाएगी।

बेटा ! देखो, इसलिए जब यह आत्मा परमात्मा के निकट जाने वाला बन जाता है, जितने निकट जाता रहता है, उतना परमात्मा की परिधि में घूमर करके कार्य करने लगता है, जितना

उसके निकट जाता है, उतना ही प्रभु से (अपने मस्तिष्क परमाणुओं में प्रेरणा प्राप्त करके) इस प्रकार से ज्ञानी बन जाता है। यह तो तुम मानते हो ! बेटा ! और यदि इसको भी न मानते तो तुम्हें यह मानना ही पड़ेगा कि परमात्मा ऐसा पदार्थ है, ऐसा महान् है,ऐसा देवों का देव है जो प्रभु हमें सभी कुछ पदार्थ देकर के हमारे जीवन को चला रहा है। यदि हम उसको न मानें तो बेटा ! हमारी हानि ही हानि है। हिं, हिं, हिं (हास्य)

गुरु जी ! आपकी तो वही बात है कि जो हम कहते हैं, वही सत्य है।

अरे ! फिर वही बात। अरे ! यह तो हम नहीं कह रहे भाई। हमने तो जो पाया, आचार्यों से जो सुना और जो वेदों में खोज कर पाया वह तुम्हारे समक्ष नियुक्त (उपदेश) कर रहे हैं और जो कुछ अनुभव किया है (वह भी)।

तो गुरु जी किसी का अनुभव आपसे उच्च भी तो हो सकता है ?

हाँ, हाँ, अवश्य हो सकता है। हमसे तो बेटा तुम्हारा अनुभव भी ऊंचा है। इसमें क्या संकोच की बात है। हमारे से तो सभी का अनुभव उच्च है। हमने तो जो खोजा है वह तुम्हारे समक्ष नियुक्त कर दिया। अब यह तुम्हारी महत्ता है, यह तुम्हारा विचार है। इसे मानो या न मानो। यह तो तुम्हारी बुद्धि की अनुकूलता है। जो तुम्हारी बुद्धि स्वीकार करले मान लो। इसमें किसी की कोई हानि नहीं है। सत्य के उच्चारण करने में और सत्य को मानने में किसी की कोई हानि होती ही नहीं।

चलो भगवन्।

तो मुनिवरो ! अभी अभी हम महानन्द जी के बहुत से प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। अभी अभी हमारा व्याख्यान चल रहा था कि परमात्मा को न मानने से हमारी हानि ही हानि है और परमात्मा को मानने से हम में बल आता है, विद्या आती है, हम श्रद्धालु बन जाते हैं। हम उस परमात्मा की गोद में चले जाते हैं। जो परमात्मा हमारा हर प्रकार से लालन-पालन कर रहा है।

तो मुनिवरो ! परमात्मा ने इस संसार को हमारे लिये ही बनाया है। हम इस (संसार) में अपना कर्म करने के लिए उदित हुए (जन्मे) हैं।

सृष्टि के आरम्भ होने से पूर्व यह आत्मा परमात्मा से कहता है कि हे परमात्मन् ! हमारे लिए सृष्टि का आरम्भ करो, हम इस संसार में आना चाहते हैं। (हमें) पूर्व की भांति उत्पन्न करो। हमारे जो शेष कर्म हैं हम उनको किसी न किसी प्रकार पूर्ण करें।

तो मुनिवरो ! उस समय परमात्मा हमारे लिए सृष्टि का प्रारम्भ कर देता है।

सृष्टि तथा जीव के जीवन की अनिश्चित अवधि

अहा ! मुनिवरो ! देखो, परमात्मा ने अवधि बनाई है कि इतने समय तक रात्रि रहेगी, इतने समय तक दिवस रहेगा। मुनिवरो। जिस समय संसार को उत्पन्न करते हैं दिवस आ जाता है। परमात्मा के बनाए हुए संसार में (नित्य परिवर्तन) आता (रहता) है। जो सूर्य का प्रकाश करोड़ों वर्ष पूर्व था, वह अब नहीं और जो अब है, वह करोड़ों वर्ष पश्चात् नहीं रहेगा। बेटा ! एक समय वह आयगा कि चन्द्रमा में ज्योति नहीं रहेगी।

एक समय वह आयगा कि वायु में प्राण सत्ता और पृथ्वी में गन्ध नहीं रहेगी। परन्तु जिस समय ऐसी स्थिति आजायगी, उस समय प्रलय काल बन जायगा। (इस प्रकार की) यह अवधि परमात्मा ने नियुक्त (निश्चित) की है (इसी प्रकार से) हमारे शरीर की भी एक अवधि निश्चित की है।

अतः आज हमें मान लेना चाहिये कि परमात्मा ने इस संसार क्षेत्र में कर्म करने के लिए हमें भेजा है। मुनिवरो ! यह आज का हमारा आदेश है।

अच्छा महानन्द जी अभी अभी प्रश्न करेंगे कि परमात्मा ने जो इस संसार को इस प्रकार की चेतना दी है तो परमात्मा की चेतनता परमात्मा क्यों ले लेते हैं ?

चलो, इसका आप ही उत्तर दिए देते हैं। परमात्मा ने एक समय जब (अव्यक्त प्रकृति) को महत्व दिया, प्राण दिए, क्रिया दी, तन्मात्राएं दी, मानो यह सब पञ्च भूत बने, हमारा शरीर बना। परमात्मा ने इस प्रकार यह क्यों किया ? ऐसा रचकर फिर इसकी प्रलय कर देता है। नित्य प्रति परमात्मा ऐसा क्यों करता है ?

महानन्द ! देखो, यह प्रश्न विचारणीय है। इस दार्शनिक प्रश्न का उत्तर यह है कि परमात्मा ने सब की अवधि बनाई हैं। (उसी के अनुसार) हमें सौ वर्ष की अवस्था वाला जीवन दान किया है। यह जीवन श्वासों पर बनाया गया है। योगाभ्यास से चार सौ वर्ष या इससे भी अधिक आयु हो सकती है। मुनिवरो ! योगाभ्यास के द्वारा अपने सूक्ष्म, कारण और स्थूल सब शरीरों को जानने वाले बन जाएंगे, तब भी हमारे शरीर की अवधि है। ऐसे ही परमात्मा ने सूर्य की सविता-

सत्ता चन्द्रमा को कान्ति, वायु को प्राण रूपी सत्ता अग्नि को अवधारणा, वैश्वानरत्व (पाचकत्व-शक्ति) वरुण को सत्ता, प्राण सत्ता निश्चित अवधि के लिए दी है। समय व्यतीत होने पर यह सब चर-अचर जगत परमात्मा के गर्भ में चला जायगा। उस समय यह जड़ प्रकृति शून्य रूप (अव्यक्त रूप) होकर अन्तरिक्ष में रमण कर जायगी। ये प्राण परमात्मा के गर्भ में चले जायेंगे।

पर अब यह विचार आता है कि जिसके गर्भ अन्तरिक्ष में अव्यक्त रूप होकर प्रकृति एवं प्राण समा जाते हैं वह परमात्मा कहां बैठा हुआ है? आज समय नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर हम कल देंगे।

हां भगवन्! जब गूढ (विषय का) समय आता है तब आप ऐसा ही कह देते हैं। समय कल के लिए नियुक्त कर दिया जाता है (हिं, हिं, हिं)

महानन्द जी! तुम तो किसी काल में बहुत ही उत्तम वार्त्ता उच्चारण कर देते हो (हिं, हिं, हिं, हास्य) जो हमें भी मन-मन्ता हिं, हिं, हिं (हास्य) आ जाती है! हिं, हिं, हिं, (हास्य)

अच्छा कृपा कीजिए।

तो मुनिवरो! महानन्द जी के नवीन विचारणीय विषय पर कल महान् दार्शनिक विचार तुम्हारे समक्ष नियुक्त (उपदेश) करेंगे। अच्छा मुनिवरो! (प्रलय में) यह आत्मा कहां चला जाता है? इस विषय को भी कल ही कहेंगे।

आज तो हमारा प्रसंग चल रहा था कि क्या परमात्मा ने अवधि बनाई है? अपनी अवधि पर ही क्या यह संसार समाप्त हो जाता है? क्या अपनी अवधि पर यह संसार उत्पन्न हो

जाता है? इसमें क्रिया आ जाती है। आत्मा अपने-अपने समय पर कर्मों के अनुकूल कर्म करने के लिए नियुक्त हो जाता है। मुनिवरो! देखो, यह बहुत गूढ़ विषय है। कल का हमारा व्याख्यान इससे (भी) गूढ़ हो जायगा।

अहा! अभी अभी हमारा व्याख्यान क्या चल रहा था? विषय था कि परमात्मा ने इस संसार को क्यों बनाया? किस लिए बनाया? किसके लिए बनाया?

मुनिवरो! यह (संसार) हम आत्माओं के लिए बनाया है, (आत्मा) को कर्म करने के लिए बनाया है।

यदि हम संसार क्षेत्र में आकर के, इस परमात्मा की बनाई हुई (सर्वांगपूर्ण) सृष्टि में आकर के अच्छे कर्म नहीं करेंगे तो हमसा धूर्त्त कोई न होगा। (ऐसी दशा में) हमसा बड़ा मूर्ख, हमसा बड़ा अज्ञानी कोई न होगा। इसलिए बेटा! हमारे व्याख्यानों का अभिप्राय यह है कि मानव को इस संसार क्षेत्र में आकर अच्छा कर्म करना चाहिए।

हमारे समक्ष दो प्रकार के कर्म हैं। एक आध्यात्मिक, दूसरा भौतिक। इन दोनों प्रकार के कर्मों को (समयानुसार और उचित मात्रा में) करना चाहिए।

पर आज का मानव तो (केवल गृहस्थ) के महत्व को मानकर केवल भौतिक कर्मों में ही लीन हो रहा है। आध्यात्मिक कर्मों को त्यागता जा रहा है। पर हमारे कहने का यह अर्थ भी नहीं कि भौतिक उन्नति न की जावे। या उदर पूर्ति न की जाए।

आत्मा का भोजन

हम तो यह कहते हैं कि जब आज का मानव प्रातः समय से सायं समय तक उदर-पूर्ति का प्रयत्न करता है तो जो आत्मा

तुम्हारे शरीर में विराजमान है उसके भोजन का भी (प्रबन्ध) करो। उसका भोजन सत्संग करना है। उसका भोजन वेद के वाक्यों को पाना (अध्ययन) है। उसका भोजन उस परमात्मा का विचार करना है। यही परमात्मा को भी भोजन देना है।

मुनिवरो ! जैसे आज का मानव अपने उदर की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है वैसे ही आत्मा को भोजन देने का प्रयत्न करे।

आत्मा का भोजन ज्ञान है। हमारा यह आज का आदेश है।

हमें भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार का कर्म करना चाहिए। तभी हमारे जीवन का विकास बहुत सूक्ष्म समय में हो जायगा।

प्रश्न होता है कि यह कैसे सम्भव है कि उदर पूर्ति भी कर लेवें और आध्यात्मिक विज्ञान को भी पा लें। यह दो प्रकार की स्थिति हम कैसे पालें।

मुनिवरो ! इस जीवन के भाग बना करके संसार में चलो। देखो ! एक अलंकार हमारे कंठ आ गया।

मुनिवरो ! एक वैश्य कृषक था। वैश्य कृषि किया करते थे। वसन्त ऋतु में उस कृषक की कृषि लहलहा उठी। उस कृषक के क्षेत्र की ओर एक क्षत्रिय, एक ब्राह्मण और एक दरिद्र तीनों आ निकले। उन्होंने परिपक्व कृषि को देखकर उसी में से तीनों ने खाना आरम्भ कर दिया। उसी समय कृषक भी आ पहुँचा। उसने तीन व्यक्तियों को देखकर सोचा कि अब क्या करना चाहिए ? क्योंकि ये तो तीन हैं और मैं अकेला हूँ। अब बुद्धि से विचार कर कार्य करना चाहिये। उसने उस समय ब्राह्मण के चरणों को स्पर्श किया, और कहा कि महाराज आप

तो हमारे हर प्रकार से पूज्य हैं। आप तो देवता हैं। आप तो ब्रह्म को जानने वाले हैं। (ऐसी) प्रशंसा करके क्षत्रिय से कहा महाराज आप तो हमारी रक्षा करने वाले हैं हर प्रकार रक्षा करते हैं। आप तो हमारे राजाधिराज हैं। उसकी प्रशंसा करके कहा कि महाराज यह आप के साथ क्षुद्र (दरिद्री) या (तुच्छ) कौन है ?

उस समय ब्राह्मण ने कहा (कि) "भाई ! हमने तो इससे कहा था कि तू हमारे संग न चल।" तब उन दोनों ने उसको त्याग दिया। तब उस कृषक ने उस पर आक्रमण करके उसको भगा दिया। फिर वह ब्राह्मण के समक्ष पहुंचा। ब्राह्मण से कहा— कि आप तो हमारे देवता हैं पर देखिए तो यह क्षत्रिय हमें बड़े २ कष्ट देता है। यह आपके समक्ष क्यों आगया ?

अब ब्राह्मण ने सोचा कि "भाई, तुम्हें तो यह दक्षिणा भी देगा, तो अब क्या करना चाहिए।" ब्राह्मण ने (कृषक से) कहा "भाई ! मैंने तो मना किया था तुम हमारे संग न चलो।" इत्यादि। तब उस कृषक ने क्षत्रिय पर भी आक्रमण कर दिया। आक्रमण के (कारण) क्षत्रिय भी वहां से चला गया।

अब (केवल) ब्राह्मण जी रह गए। उनको भी कृषक ने कहा कि जब आप द्वार पर आते हैं न जाने क्या २ पाप-भय दिखा-कर अपना भाग आवश्यकता से भी अधिक अनुचित रूप से लेकर ही पिण्ड छोड़ते हैं। इसलिए हम तो आप पर भी आक्रमण करेंगे। यह कह कर ब्राह्मण पर भी आक्रमण कर दिया। वहां से ब्राह्मण भी भाग गया।

मुनिवरो ! इन वाक्यों का क्या अभिप्राय है ? मानव को अपने जीवन के भाग बना देने चाहिएं। हमारे जीवन के तीन भाग हैं। बुद्धि से कार्य करो। यदि वैश्य बुद्धि से कार्य न करता

तो वे तीनों ही उसको समाप्त कर देते। यदि अपने जीवन को सुखी बनाना है तो अपने जीवन के विभाग कर देने चाहिएं। कैसे विभाग।

मुनिवरो ! एक महान् राजा मन्त्रियों सहित भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने वन से समिधाएं लाकर गृहस्थियों के गृहों पर पहुंचाने वाले एक दरिद्र व्यक्ति को, जो कि मार्ग में मग्न-भाव से उच्च स्वरों के साथ गान गा रहा था, को देखा। वह ऐसा गान गा रहा था कि जैसे ऋषि जन वेदों का 'घन—पाठ' में गायन करते हों। उसके गायन पर तो पक्षीगण भी मुग्ध हो रहे थे।

उस समय राजा ने मन्त्रियों से कहा, अरे ! भाई ! यह क्या है ? यह कैसा मुग्ध हुआ गान गा रहा है ? यह कितना सुखी होगा ? जैसा कि हमने (गुरु जी ने) कल उच्चारण किया था कि ऐसा गान तो पवित्र मन वाला व्यक्ति ही गाता है। और वही गा सकता है कि जो सुखी होता है। जो सुखी नहीं, जो कलह में मग्न हो वह ऐसा गान कदापि नहीं गा सकता।

तो मुनिवरो ! राजा ने उससे कहा कि "अरे ! भाई ! तुम तो बड़ा सुन्दर गान गा रहे हो ?"

उसने उत्तर दिया कि "गान गाना मेरा कर्त्तव्य है इसलिए मैं गा रहा हूं।"

अरे ! तुझे ऐसी क्या मस्ती है ? (गायक व्यक्ति ने उत्तर दिया) कि "मुझे इतनी मस्ती है कि इतनी मस्ती तो राजा को भी कदापि नहीं हो सकती।"

राजा ने पूछा, "भाई ! यह क्या बात है ?" उस समय गायक ने कहा कि "महाराज ! देखो मैं द्रव्य कमाता हूँ। जो द्रव्य मैं प्रातःकाल से सायंकाल तक कमाता हूं, उसके चार भाग बना देता

हूं। उसमें से एक भाग तो उनको देता हूं कि जिनसे मैंने लिया हुआ है। दूसरा भाग उनको देता हूँ कि जिनसे आगे चलकर मेरे कार्य में सहायता मिलेगी। या जो इस लोक और परलोक दोनों में मिलेगा। तृतीय भाग दूसरों को देता हूँ। और चतुर्थ भाग अपने लिए रख लेता हूँ। अर्थात् अपने पर व्यय करता हूं। इस चतुर्थ भाग में मैं और मेरी पत्नी आनन्द मनाते हैं।

राजा ने कहा कि 'भाई! ये चार भाग अपने द्रव्य के कैसे बनाते हो! वे कैसे कैसे व्यय होते हैं? (यह स्पष्ट करके कहो।)"

उस समय (गायक) ने कहा कि महाराज! मैं दिन भर में जितना भी कमाता हूँ उसके चार भाग कर देता हूँ।

एक भाग तो मैं उन्हें देता हूँ जिनसे मैंने लिया है। वे कौन हैं? वे मेरें माता पिता हैं। जिन्होंने मेरी पालना की, मेरी माता ने मुझे गर्भ स्थल में धारण किया, मुझे योग्य बनाया। मुझको पाल कर उच्च बनाया। मैं उनको एक भाग देता हूँ।

दूसरा भाग वेदों के विद्वान्, वेदों का प्रचार करने वाले विद्वान्, सदाचारी ब्राह्मणों, अतिथियों और महान् योगियों की सेवा में लगा देता हूँ या उनको दान कर देता हूँ। यह द्रव्य मुझको परलोक में प्राप्त हो जायगा।

तीसरा भाग मैं संसार के व्यक्तियों को देता हूँ। जब मुझको अधिक द्रव्य की आवश्यकता पड़ती है तब मैं उनसे ले लेता हूँ।

चतुर्थ भाग में मैं और मेरी पत्नी दोनों आनन्द से रहते हैं। तब मैं इतना सुखी हूँ। इसी कारण मैं इस प्रकार का गान गा रहा हूँ। यदि मैं सुखी न होता तो आज मार्ग में ऐसा गान

कदापि न गा सकता।

तो मुनिवरो ! इसलिए मानव को अपने जीवन के चार भाग बना देने चाहिये। तभी हम दोनों (आध्यात्मिक और भौतिक) कार्य कर सकते हैं। देखो, आध्यात्मिक विज्ञान भी पा सकते हैं और भौतिक विज्ञान भी पा सकते हैं। दोनों विज्ञान को पाने वाले तभी बनेंगे जब बुद्धि से कार्य करेंगे। महान् देखो, जब नष्ट करने वाले अनिष्ट कार्य करेंगे, तो वास्तव में ही हमारा जीवन समाप्त हो जायगा। हम इस संसार में आकर कोई भी लाभ प्राप्त न कर सकेंगे। इसलिए बेटा ! यह आज का हमारा आदेश है।

धन्य हो भगवन् !

तो मुनिवरो। आज हमारा व्याख्यान क्या चल रहा था कि मानव के लिए आत्मा के लिए ही परमात्मा ने संसार को बनाया है। यह मानव को (अच्छी प्रकार से) जान लेना चाहिये। इसमें आकर के हम दोनों प्रकार के विज्ञान को पाते चले जाएं, तब ही हमारा जीवन उच्च बनेगा। अन्यथा हमारे जीवन को उच्च बनाने का कोई साधन नहीं।

मुनिवरो ! मानव का वही गान होता है जो महाराजा कृष्ण ने महाराजा (अर्जुन) के समक्ष गाया था। जिससे महाराजा अर्जुन का इतना बड़ा अज्ञान समाप्त हो गया। वास्तव में मुनिवरो ! गायन होना भी ऐसा ही चाहिये। कल हमने इसी विषय में उच्चारण किया था। अब हमारा आदेश समय की समाप्ति के साथ समाप्त हो रहा है।

तो मुनिवरो ! कल समय मिलेगा तो शेष त्यक्त विषय पर प्रकाश डालेंगे। अब हमारा आदेश समाप्त हुआ, कल इससे

आगे उच्चारण किया जायगा। अब हमारा वेदों का गान होगा, हमारा वेद का पाठ होगा।

आज हमारे व्याख्यान का अभिप्राय यह है कि "हमें परमात्मा को पाना है, परमात्मा को किस स्थिति में पाना है? हम परब्रह्म को पाकर ब्रह्म बन जाते हैं।

हमारे जो मनु आदि आचार्यों ने कहा है कि ब्रह्म रात्रि (महाप्रलय) और ब्रह्म दिवस इतने समय का क्यों है? ब्रह्मा का एक दिवस एक कल्प का क्यों होता है? इसका भी कल संक्षेप में वर्णन करेंगे। धन्यवाद! तो अब हमारा आदेश समाप्त हो गया है। कल हम महानन्द जी के कुछ प्रश्नों का उत्तर भी देंगे। अब व्याख्यान समाप्त हो गया है। अब वेदों का पाठ होगा और इसके पश्चात् वार्ता समाप्त हो जायगी। वेद—पाठ!

—:(०):—

❀ ओ३म् ❀

प्रलय काल में सृष्टि और परमात्मा का स्वरूप

तथा मानव के लिए ब्रह्मचर्य का महत्व

इस प्रवचन में, १—वेद मन्त्रों के शुद्ध पाठ करने में असमर्थता, २—क्या प्रभु से जीव की याचना करना उचित है ? ३—प्रलय काल में सारे संसार को परमात्मा अपने गर्भ में रखकर स्वयं कहां रहते हैं ? ४—जीव प्रभु की स्तुति, प्रार्थना और उपासना क्यों करे ? ५—परमात्मा ने संसार को क्यों उत्पन्न किया है ? ६—जीव की अपेक्षा से ही ब्रह्म-दिवस ब्रह्मरात्रि तथा ब्रह्म शतायु का नाम किया गया है। ७—मुक्ति से लौटने का काल और मुक्ति से लौटने का कारण एवं अनिवार्यता। ८—परमात्मा के विशेष गुण। ९—जीव के मुख्य गुण। १०—माता कैसी हो ? ११—पुत्र के लिए ब्रह्मचर्य का महत्व। १२—राजा और राज्य के लिए ब्रह्मचर्य का महत्व। १३—अखण्ड ब्रह्मचर्य से मृत्युञ्जय बनना। ये विषय पाठकों को अध्ययन करने के लिए मिलेंगे।

[सम्पादक]

स्थान—लोधी कालोनी, नई दिल्ली-३
दिनांक—२ अप्रैल, सन् १९६२ ई०

देखो मुनिवरो ! अभी-अभी हमारा पर्ययण (वेदावलोकन का) समय समाप्त हुआ। हम तुम्हारे समक्ष उन वेद मन्त्रों का पाठ कर रहे थे कि जिनका पाठ, हमारे महर्षि अंगिरा मुनि आचार्य ने सात स्वरों में किया था।

वेद मन्त्रों के शुद्ध पाठ करने की असमर्थता

हम पूर्व की भाँति वेदों का पाठ अच्छी प्रकार से नहीं कर सकते। परन्तु हमारे गुरु ब्रह्मा जी ने बहुत पूर्व काल में कहा था "वेद पाठ न करने से कुछ करना भी सुन्दर होता है।" इसलिये आज उसी आज्ञा के आधार पर वेदों का गान गा रहे थे। महान् प्रभु हमारी वाणियों की भी वाणी है। हमारी वाणी में माधुर्य उसी का दिया हुआ है। वह महान् प्रभु इस संसार को चला रहा है। हमारे जीवन की नाना योजनाएं बना रहा है। आज के मन्त्रों में उस प्रभु की महत्ता का वर्णन किया गया है।

आज के वेद मन्त्रों में जो प्रभु का गुण गान किया गया है, हम तो उनका भी पूर्ण रूप से व्याख्यान करने में असमर्थ हैं। हम जो कुछ व्याख्यान करते हैं, उसकी रूप रेखा परमात्मा के दिये उपदेश वेद मन्त्रों से ही लेकर कुछ व्याख्यान कर पाते हैं।

क्या प्रभु से जीव की याचना करना उचित है?

महानन्द जी के संकेतों पर आज हम पूर्व मन्त्रों में इस विधाता से जिसने इस संसार को हमारे लिए उत्पन्न किया है, और इस सब को चला रहा है, अपने गायन में याचना कर रहे थे, इच्छा कर रहे थे।

ऐसा कहा जाता है कि मांगना तो कायरों का कार्य है। परन्तु जिस विधाता ने इस संसार को हम सब के लिए उत्पन्न किया है, आज हमें उससे मांगने में, किसी की अभिलाषा करने में या इच्छा करने में हमारी कोई किसी प्रकार की हानि नहीं होगी।

याचना करने में हानि किस काल में होती है? हानि उस काल में होती है कि जब मानव अपने को भुलाकर अपनेपन को नष्ट कर देता है। अर्थात् भोग-विलास में मग्न होकर भोग-विलास की सामग्री की ही भोग-विलास के लिए याचना करता है, तब याचना में हानि ही हानि उठानी पड़ती है। और जब मानव--मानव के रक्त का अभिलाषी होकर परमात्मा से याचना करता है तब उसकी हानि ही हानि होती है।

परन्तु जो विधाता हमें सब प्रकार का महत्व देने वाला है, प्रेरणा देने वाला है, जो वाणियों का भी वाणी बना बैठा है, जो हमारी आत्मा के समक्ष बैठा हुआ है, आज हम उस प्रभु से मांगें तो उसमें हमारा कोई दोष नहीं। क्योंकि वह विधाता तो इतना बड़ा दानी है कि यदि हम न भी मांगेंगे तब भी वह विधाता हमारे कल्याण के लिए सब ही पदार्थ प्रदान कर रहा है।

वह विधाता कितना बड़ा दानी है? उसी विधाता के महत्व प्रदान करने से ही प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या (नारी) संसार क्षेत्र में आकर अपना २ कार्य किया करते हैं। प्रत्येक जीव उसी के आश्रय में अपना जीवन चला रहा है।

प्रलय काल में समस्त संसार को अपने गर्भ में रखकर प्रभु स्वयं कहां रहते हैं?

महानन्द जी का कल का एक प्रश्न हमारे समक्ष है। अर्थात् जब प्रलयकाल आ जाता है तब संसार के समस्त पदार्थ परमाणु रूप में बदल कर परमाणु अन्तरिक्ष में रमण करते हैं, आरम्भ सृष्टि में अव्यक्त प्रकृति को दिया हुआ महत्व परमात्मा में रमण कर जाता है। यह महान् व सामान्य प्राण परमात्मा

में रमण कर जाते हैं। तब यह विधाता किस स्थान में रहता है ? और कहाँ रहता है ? प्रभु की उस काल में क्या गति हो जाती है ?

अब तो हम यह मान बैठे हैं कि परमात्मा लोक-लोकान्तरों को चला रहा है, वह सर्व व्यापक है, हमारे में भी रमणकर रहा है, वह सर्व संसार को चला रहा है। पर जब प्रलय काल आता है तब परमात्मा स्वयं कहाँ और किस स्थिति में होते हैं ? अब हमारे समक्ष यह दार्शनिक विषय आ जाता है।

अहा ! आदि दार्शनिकों ने तो इसके सम्बन्ध में बहुत ही कुछ कहा है। आज उन दार्शनिकों का विचार तुम्हारे समक्ष नियुक्त करेंगे। जैसा कि हमने पाया है और जैसा दार्शनिकों ने निर्णय दिया है।

मुनिवरो ! त्रेता काल में एक समय हमारे आदि दार्शनिक–वशिष्ठ मुनि महाराज, महाराज विश्वामित्र, आचार्य धुन्ध महर्षि, कपिल मुनि महाराज, कुण्डल ऋषि महाराज, महर्षि गौतम, सभीक मुनि महाराज, विभाण्डक मुनि महाराज और लोमश मुनि महाराज, अत्रि मुनि महाराज और अत्रि मुनि महाराज की धर्मपत्नी अनुग्रहा आदि महर्षियों का समाज एक स्थान पर नियुक्त हो गया।

बेटा ! उस दार्शनिक समाज की स्थिति का वर्णन करते हुए हमारी वाणी चकित हो रही है। उस दार्शनिक समाज में अत्रि मुनि महाराज आदि ऋषियों के समक्ष प्रश्न किया गया कि "भाई ! प्रलय काल में परमात्मा की क्या गति होती है ? क्या दशा होती है ? जब प्रकृति सूक्ष्म होकर परमात्मा में रमण कर जाती है तब परमात्मा की क्या स्थिति होती है ?"

उस समय मुनिवरो ! अत्रि मुनि महाराज, विभाण्डक मुनि, आचार्य लोमश मुनि महाराज, समीक मुनि महाराज आदि महर्षियों ने कहा कि "जब यह महान् प्रकृति शून्य रूप होकर अव्यक्त रूप होकर माता और पिता रूप परमात्मा के गर्भ में रमण कर जाती है, तब व्यापक परमात्मा उसको गर्भ में धारण करके वह पूर्ववत् ही रमण करता रहता है।"

मुनिवरो ! जैसे माता अपने गर्भ स्थल में पुत्र को धारण करती है वैसे ही वह माताओं की माता दुर्गा सारी प्रकृति और सारे जीवों को अपने गर्भ में धारण करके, प्रकृति को आश्रय देकर के, विश्राम दे करके फिर से उसकी शिथिलता का उसकी निर्बलता का हरण करके उसमें कार्य करने की शक्ति को फिर से स्थापित कर देती है।

मुनिवरो ! देखो, प्रश्न होता है कि जब यह महान् एवं विशाल प्रकृति परमात्मा के गर्भ में चली जाती है तब वह परमात्मा इस संसार को कैसे प्रकृति से बनाता है ?

मुनिवरो ! जैसे मानव जीवन की अवधि है ऐसे ही परमात्मा के बनाये ब्रह्माण्ड की अवधि है। जैसे माता के गर्भ-स्थल की अवधि है वैसे ही माता दुर्गा, वह परमात्मा दुर्गा के गर्भ की अवधि है। परमात्मा के नियमों के अनुसार यह संसार बनता है। उसी के नियमों के अनुसार यह महान् प्रकृति और ये सारे जीव उस माता दुर्गा के विशाल गर्भ में समा जाते हैं।

अहा ! मुनिवरो ! हमारे दार्शनिक इसी निश्चय पर पहुँचे हैं। यही उनका वाक्य है। मानव को इसका मानना अनिवार्य है, आवश्यक है।

मुनिवरो ! परमात्मा के नियम के आधार पर यह संसार बनता है अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति होती है और माता दुर्गा के

नियमों के अनुसार यह आत्मा (जीव) जैसे २ कर्म करता है, जैसी-जैसी इच्छा करता है, वैसे-वैसे ही जन्म लेता रहता है, अपने शुभ और अशुभ कर्मों का फल भोगता रहता है।

जीव परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना क्यों करे ?

मुनिवरो ! प्रश्न होता है कि जब संसार परमात्मा के नियमों के अनुसार बनता बिगड़ता रहता ही है और जीव अपने कर्मानुसार फल पाता ही रहता है तो यह आत्मा (जीव) परमात्मा से अनुरोध अर्थात् उसकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करे या न करे ? करे तो क्यों करे ?

मुनिवरो ! जब माता के गर्भ में यह जीवात्मा मन के साथ निवास करता है, जैसा कि हम पूर्व भी कह चुके हैं, उस समय यह आत्मा न तो व्याकुल होता है। बेटा ! और न श्वास लेता है, न यह अपने मुखारविन्द से परम पिता परमात्मा की स्तुति आदि का उच्चारण ही कर पाता है। न कुछ कार्य ही कर पाता है। परन्तु मुनिवरो ! तो भी यह आत्मा मन सहित परमात्मा से सम्बन्ध करता है। परमात्मा की सेवा में कहता है कि हे प्रभो ! मैं इस अन्धकार से पृथक् होना चाहता हूँ। मुझको इस अन्धकार से पृथक् करो।

मुनिवरो ! उस समय यह आत्मा अन्धकार में रहता है। उस समय जीव को कर्म करने का अवसर नहीं प्राप्त होता है, कर्म करने की सुविधाएं नहीं मिलतीं। उस समय शून्य प्रकृति में रहता है। उस समय मुनिवरो ! यह आत्मा प्रभु से याचना करता है।

"हे विधाता ! इस अन्धकार में मुझको कर्म करने का अवसर नहीं मिल रहा है। मुझे उस तेज को दो, प्रकाश को

दो, जिससे संसार क्षेत्र में आकर के मैं कर्म करने के लिए उद्यत हो जाऊं। हे विधाता! मेरे लिए उस महानता को उत्पन्न करो, उस महानता को, जिससे मैं संसार क्षेत्र में आकर उसे करने के लिए नियुक्त हो जाऊं।"

तो मुनिवरो! माता के गर्भ में रहती हुई आत्मा जैसे अन्धकार से पृथक् करने के लिए परम पिता से प्रार्थना करती है वैसे ही प्रलय काल के अन्धकार में मग्न आत्माएं परम-पिता परमात्मा से पुनः-पुनः याचना करती हैं। उस समय पर-मात्मा नियम के अनुसार ही संसार को उत्पन्न कर देते हैं।

मुनिवरो! यह तो अनिवार्य है कि आत्मा को परमात्मा से अनुरोध अवश्य ही करना पड़ता है।

परन्तु करता क्यों है? इसका (जीव का) संसार में आकर क्या कार्य है?

मुनिवरो! गर्भस्थ जीव परमात्मा से अपने अनुरोध में कहता है कि प्रभु! मेरे जो कर्म शेष रह गये हैं उन शिष्ट कर्मों के द्वारा अपनी आत्मा को महान् बनाने का यत्न करूंगा और आपके आँगन में रमण करने के लिए आऊंगा (अर्थात् मुक्ति लाभ करके आपके परमानन्दका लाभ कर सकूंगा)। हे मुनिवरो! इस संसार में आत्मा के आने का यही एक मात्र उद्देश्य है। इसीलिए परम पिता परमात्मा जीव को संसार में उत्पन्न करते हैं।

मुनिवरो! परन्तु यह आत्मा (जीव) संसार में जन्म लेकर कामनाओं में, वासनाओं में और विषयों में ऐसा फंस जाता है कि यह प्रकृति का दास बन जाता है। प्रकृति इसको आदेश देती है। यह प्रकृति की ओर झुक जाता है। देखो, प्रकृति में रमण करके ऐसा भटक जाता है कि अपने वचनों को भुला

बैठता है। अपने महत्व को भुला बैठता है । अर्थात् सब कुछ नष्ट कर देता है।

तो मुनिवरो। हमारे महान् दार्शनिकों ने यह कहा है कि माता गर्भ स्थल में जैसे बालक को धारण करती है वैसे ही परमात्मा प्रलय काल में इन असंख्य जीवों को और सारी प्रकृति को अर्थात् इन दोनों को अपने गर्भ में स्थापित करता है।

सृष्टि का उद्देश्यः—

मुनिवरो ! देखो ! वह प्रभु इस संसार का आधार है। इस प्रकृति और आत्मा का आधार है। आज हमें यह पक्का निश्चय कर लेना चाहिए कि "यह जो संसार बनाया है, यह जो संसार बना है । परमात्मा ने इसको बनाया है। और क्यों बनाया है ? कर्म करने के लिए बनाया है। आज हमें इसमें आकर के कर्म करना चाहिए। अपने जीवन को व्यर्थ न खो देना चाहिए।

मुनिवरो ! हमारे मनु आदि आचार्यों ने, ब्रह्मा आदि ऋषियों ने और हमारे गुरु ब्रह्मा ने भी ऐसा ही कहा है कि महान् संसार की रचना गणित विद्या के समान नियमानुसार है। विलक्षण है।

मुनिवरो ! एक समय महर्षि नारद मुनि ने अपने कपिल मुनि महाराज से प्रश्न किया था कि "महाराज हम यह जानना चाहते हैं कि ब्रह्मा की यह (सृष्टि की) अवधि क्या है ? ब्रह्मा की जो एवं रात्री है यह क्या पदार्थ है ? ये अहोरात्र और कल्प ऐसे क्यों हैं ? इनका यह रूप क्यों निर्धारित किया गया है ?

उस सभा में महर्षि प्राधी मुनि महाराज, मार्कण्डेय मुनि महाराज, महर्षि भृगु मुनि महाराज आदि ऋषि गण विराजमान थे। उस समय कपिल मुनि आदि आचार्यों ने यह निर्णय किया था कि इस ब्रह्म अवधि के द्वारा (सत्कर्म करके) आत्मा पर-ब्रह्म को पा लेता है। यह आत्मा ब्रह्म बन जाता है। तात्पर्य यह है कि इस अवधि में आत्मा ब्रह्म बन सकता है। आत्मा के ब्रह्म बनने की यह अवधि है। इसलिए इस सृष्टि काल की अवधि का नाम ब्रह्म दिन हुआ। प्रश्न होता है कि यह ब्रह्म अवधि कितने वर्षों की होती है ?

ब्रह्म की शतायु की अवधिः-

मुनिवरो ! यह तो तुमने जान ही लिया होगा कि एक चतुर्युगी में तेंतालीस लाख बीस सहस्र (४३२०००० वर्ष) होते हैं। इकहत्तर (७१) चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है। ऐसे चौदह (१४) मन्वन्तरों का सृष्टि काल या ब्रह्म दिन होता है। तो चौदह (१४) मन्वन्तरों के पश्चात् एक प्रलय काल हो जाता है। इस प्रलय काल को ब्रह्म की रात्रि कहते हैं। एक सृष्टि काल और एक प्रलय काल को मिलाकर ब्रह्म का अहोरात्र कहलाता है। अर्थात् दो सहस्र चतुर्युगियों का ब्रह्मा का अहोरात्र बनता है। महान् ! देखो, ऐसे-ऐसे ३६० अहोरात्र का ब्रह्मा का एक वर्ष हो जाता है। ऐसे ऐसे ब्रह्मा के सौ वर्ष व्यतीत होते हैं तो ब्रह्मा की शतायु हो जाती है।

तो मुनिवरो ! देखो, आदि ऋषियों ने और दार्शनिकों ने निर्णय किया है। इस पर दार्शनिकों ने कहा कि यह क्या है ? ऐसा क्यों माना है ? ऐसा कौनसा ब्रह्मा है ? ऐसा इसका कौनसा शरीर है ? जो ऐसा माना गया है।

मुनिवरो ! जैसे परमात्मा की बनाई हुई सृष्टि का नियम है, माता के गर्भ स्थल में जीव के आने का नियम है, चन्द्रमा की कान्ति का नियम है, ऐसे ही ब्रह्मा की आयु का भी समय नियुक्त किया गया है।

मुक्ति से लौटने का काल :-

मुनिवरो ! यह कैसे कहा है ? जब इतना समय व्यतीत हो जाता है, जब यह जीव ब्रह्म बन कर के परब्रह्म में रमण करता है, उस परमानन्द में आनन्द करता रहता है और उसकी (ब्रह्म की शतायु) पूर्ण आयु व्यतीत हो जाती है तब बेटा ! वह मुक्त आत्मा 'ब्रह्म' पद से नीचे इस संसार में द्वितीय बार (फिर से) आ जाती है।

अब यह प्रश्न उठता है कि जब यह आत्मा अपने को जान कर परमात्मा को जानकर उसकी गोद में पहुँच कर परब्रह्म को पाकर के ब्रह्म बन जाता है तब उस ब्रह्म (मुक्त आत्मा) को इस संसार क्षेत्र में आने की क्या आवश्यकता है ? यह क्यों आता है ? इससे तो महानन्द जी का वाक्य ही सत्य हो जायगा। महानन्द जी ने एक समय कहा था कि जब जीव को मुक्ति से लौटना पड़ता है तो हमें यह प्रयत्न कदापि नहीं करना चाहिए।

मोक्ष का महत्व

हमने आदि दार्शनिकों के आधार पर एक समय यह उत्तर दिया था कि एक तो इस संसार का सुख क्षण-भंगुर है। इसके समक्ष मुक्ति का सुख कितना महान्, कितना विशाल और कितना विस्तृत है। उस परमानन्द के सामने यह साँसारिक सुख कदापि महत्व नहीं पा सकता है। मानव के जीवन का उद्देश्य तो एक मात्र यही है कि वह परमानन्द को पाता रहे।

परमानन्द को पाकर, उसी में ब्रह्मा की पूर्णायु (महाकल्प पर्यन्त) रमण करता रहे। इस महान् दुःखों के सागर रूप संसार के दुःखों में न पड़ो।

परमात्मा के विशेष गुण

मुनिवरो ! आदि आचार्यों एवं ऋषियों ने इसमें एक विशेषता बताई है। परमात्मा में अनन्त गुणों में से चार गुण विशेष रूप से हैं।

(१) एक सृष्टि को उत्पन्न करता है।

(२) द्वितीय सृष्टि की प्रलय करता है।

(३) हमारे पाप पुण्यों के कर्मों का फल देता है।

(४) संसार का पालन करता है।

ऊपर कहे गुणों वाला परमात्मा होता है। उसी को परमात्मा कहते हैं।

जीव के मुख्य गुण

इसके समस्त जीव (आत्मा) में (चौबीस गुणों में से) दो ही गुण मुख्य रूप से ऋषियों ने माने हैं। क्योंकि ये दो गुण ही रह जाते हैं। अर्थात् जीवात्मा में—

(१) ज्ञान।

(२) प्रयत्न।

क्योंकि ये दोनों गुण जीवात्मा में नित्य रहते हैं। ये किसी भी काल में समाप्त नहीं होते। यह जीव ज्ञान के द्वारा तो प्रभु को जान लेता है। प्रयत्न के द्वारा उसमें रमण करता रहता है। आनन्द ही आनन्द भोगता रहता है। परन्तु प्रयत्न से आनन्द भोगा जाता है। जीव में ये दोनों गुण कभी भी समाप्त नहीं होते। चाहे जीव परमात्मा को पाकर के ब्रह्म बन जाए। ये दो

गुण तो आत्मा (जीव) के स्वाभाविक हैं। ये गुण कदापि भी नहीं जाते।

मुनिवरो! देखो, अनेक मानवों को मिष्टान्न प्रिय है। यदि किसी मिष्टान्न प्रिय मानव के लिए बहुत अधिक मिष्टान्न का आयोजन कर दिया जाय। तो वह लम्बे समय तक मिष्टान्न खाते खाते उकता जाता है। उससे उसका हृदय घृणा करने लग जाता है। इसी प्रकार से जब आत्मा परमात्मा में अत्यधिक लम्बे समय तक रमण करता करता ऊब (उकता) जाता है तब संसार में आने की पुनः जन्म धारण करने की इच्छा प्रबल हो जाती है। तब यह परमात्मा की कृपा से संसार में पुनः जन्म धारण करता है। इस विषय में हमारा ही नहीं अपितु महर्षि अत्रि मुनि महाराज, महर्षि कोपात्री जी, महर्षि कपिल मुनि महाराज, महर्षि नारद जी, महाराज वशिष्ठ-मुनि महाराज, महर्षि विश्वामित्र महाराज आदि दार्शनिक सभी आचार्यों का यही मन्तव्य है।

गुरु जी! हमें तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे आपही ऐसा मान रहे हो।

हाँ बेटा! तुम्हें तो ऐसा ही प्रतीत होगा। अरे भाई! हम तो तुम्हें सभी प्रमाण दे रहे हैं। इसमें तो किसी अन्य युक्ति या तर्क की आवश्यकता ही नहीं। यह तो केवल तर्क का विषय ही नहीं है। यह तो विश्वास, युक्तियों और प्रमाण का विषय है। यह तो वेद का विषय है। वेद का स्वाध्याय करोगे तो तुम्हें स्वतः ही ज्ञान हो जायगा।

यदि महानन्द जी! तुम यह कहो कि आधुनिक काल में तो आत्मा—परमात्मा को एक मानते हैं। मुक्ति से लौटना नहीं मानते तो बेटा! हम इसमें क्या कर सकते हैं? बेटा हमारे

आदि आचार्यों ने जैसा माना है, जो माना है, हम तो उसी के आधार पर उच्चारण कर रहे हैं। हम तो इससे पृथक् कदापि उच्चारण नहीं करेंगे।

गुरु जी आप तो अन्य आचार्यों की कहीं कहीं की वार्ताओं का उच्चारण कर रहे हैं। आपने भी कुछ पाया है या नहीं संसार में ? या सुनी हुई वार्त्ताओं का ही उच्चारण कर रहे हो ? ही, ही, ही (हास्य)

महानन्द जी ! हम कैसे उच्चारण करें कि बेटा हमने पाया। यह तो बेटा एक मधुर वाक्य हो जाता है। इसमें तो कुछ संकोच होता ही है।

इसमें संकोच ही की क्या बात है ? गुरु जी ! जिस वस्तु के विषय में जो कुछ भी प्रत्यक्ष करके जाना या पाया उसके निर्णय करने में आपको क्या हानि ?

बेटा ! इसमें कोई हानि नहीं। चलो इसका भी निर्णय किए देते हैं।

मुनिवरो ! गहरी दृष्टि से, उच्च विचार करने से और परम्परा के अनुसार ऐसा प्रश्न होता है कि परमात्मा ने इस अद्भुत संसार को कैसे बनाया ? मुनिवरो ! इस विषय में हमारा निर्णय यही है कि यह अद्भुत संसार परमात्मा का खेल सिद्ध नहीं होता। परमात्मा खेल क्यों रचाए। परमात्मा तो पूर्ण है। परमात्मा को खेल रचाने की क्या आवश्यकता ? खेल कौन रचाता है ? खेल अज्ञानी रचाता है। जिस मानव का मन चंचल होता है खेल वह रचाया करता है। पर परमात्मा तो पूर्ण है, सर्वज्ञ है, पूर्ण काम है, निर्द्वन्द्व है। वह इतना अपार है कि उसका तो पार ही पाना सर्वथा असम्भव

है। उसकी तो अपारता का वर्णन ही नहीं किया जा सकता। ऐसा हमारा ही निश्चय नहीं है। यह तो बेटा ! आदि आचार्यों ने गहरी दृष्टि से निर्णय किया है।

बेटा ! परमात्मा विशेष नियम के अनुसार जीवों के कल्याण के लिए संसार को बनाता है। संसार की रचना पर और उसके नियमों पर विचार करने से यह सिद्ध हो जाता है।

मुनिवरो ! हम व्याख्यान देते देते ब्रह्मा आदि शब्दों पर जा पहुँचे। अर्थात् इसको ब्रह्मा क्यों कहते हैं ? ब्रह्मा की अवधि इस प्रकार क्यों मानी गई है ? यह अहोरात्र इस प्रकार का क्यों माना गया है ? ये ऐसे क्यों माने गये हैं ?

यह सृष्टि उस ब्रह्म पद प्राप्त जीव के कारण ब्रह्म का दिवस कहलाती है। इसी प्रकार प्रलय काल ब्रह्म-रात्रि कहलाती है। जैसे मानव की शत वर्ष की आयु होती है वैसे ही इन ब्रह्म दिवस और ब्रह्म रात्रि की गणना करके एक महाकल्प ब्रह्म की शत वर्ष की आयु निर्धारित की गई है।

मुनिवरो ! यह सब जीवात्मा के जीवन के आधार पर ही निश्चित किया गया है। आचार्यों ने यह निर्णय दिया है। हमें किस सत्ता के आधार पर रहना चाहिए ? देखो, हमें उस परमात्मा की सत्ता का आधार मान कर चलना चाहिए जिससे समाज में अज्ञान न फैले जीवन की ऊँची योजना बनाने की आवश्यकता है।

माता कैसी हो ?

मुनिवरो ! आज के वेद पाठ में माताओं के विषय में बड़ा सुन्दर वर्णन आ रहा था। यह एक मधु एवं सूक्ष्म उपदेश है। देखो ! माता प्रकृति को कहते हैं। यह सारी प्रकृति और जीव

उस माता दुर्गा अर्थात् प्रभु के गर्भ स्थल में रहते हैं। जैसे माताओं की माता दुर्गा (परमात्मा) हमारे जीवन को उच्च बनाती है। वैसे ही हमारी जननी माता भी हमारे जीवन को उच्च बनाने वाली है। वास्तव में जननी माता वह ही हो सकती है जो परमात्मा के समान अपने पुत्रों का कल्याण करके उच्च पद पर पहुँचाने वाली हो। जो संसार सागर में ऊंची प्रेरणा देने वाली हो। वह माता कैसी हो ? जो गर्भ स्थल में ही वर्त्तमान आत्मा को ऊंची शिक्षा प्रदान करने वाली हो। ऐसा हमने द्वापर युग में पाया था। प्रत्यक्ष किया था।

मुनिवरो ! इस विषय में महानन्द जी ने नाना प्रश्न किये। इनके समाधान में हमारी द्वापर की एक देखी हुई घटना है।

द्वापर में महाराजा गंगेतु राजा की गंगोत्री (गंगा) नामक सुन्दर कन्या थी। उसका विवाह संस्कार राजा शन्तनु के साथ हुआ है। वे आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। राजा शन्तनु के गंगोत्री से सात पुत्र उत्पन्न होकर, सब के सब समाप्त होते गये। महाराजा शन्तनु को बड़ी चिन्ता हुई। क्योंकि उनके राष्ट्र का (राज्य का) सम्भालने वाला कोई न रहा। कुछ काल पश्चात् बड़ा सुन्दर आठवाँ बालक उत्पन्न हुआ। मुनिवरो ! बाल्यावस्था में ब्राह्मणों ने उसका नाम 'गंग-शील' नियुक्त किया। गंग-शील बाल्यावस्था से ही बड़ा चतुर बड़ा तेजस्वी था।

राजा शन्तनु के कुल पुरोहित एवं राष्ट्र पुरोहित महर्षि पारामुनि के गृह पर मुनि से शिक्षा पाने लगा। बालक की तीव्र बुद्धि, उसके शील से पारामुनि बहुत प्रसन्न थे। पारामुनि गंगशील को कौडली ब्रह्मचारी कहने लगे। यह नाम उन्होंने

इसलिये रखा था कि वे आत्मा के विषय में अत्यधिक परिश्रम किया करते थे। ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करते थे।

ब्रह्मचर्य का महत्व

कुछ समय पश्चात् माता गंगोत्री का स्वर्गवास होने लगा। मृत्यु समय राजा शन्तनु और कौडली ब्रह्मचारी उपस्थित थे। माता ने पुत्र से कहा कि "इस समय मेरे अन्तिम सांस चल रहे हैं। मेरा जीवन समाप्त होने वाला है। परलोक को जाने वाली हूं।" मेरा आदेश है कि "जब तक तू जीवित रहे तू अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना। जिससे कि तुझे मृत्यु (काल) छू भी न सके। अपनी इच्छानुसार शरीर को त्यागने वाला बनना। तूने मेरे गर्भ से जन्म धारण किया है। मेरा गर्भाशय तभी उज्ज्वल होगा कि जब तू महान् ब्रह्मचारी बन करके अपने जीवन को हर प्रकार से उच्च बनायेगा।"

आज देखो, यदि हम अपने जीवन को, अपने समाज को, अपने राष्ट्र को उच्च बनाना चाहते हैं तो हमारी माताओं को भी गंगोत्री माता के समान बनना होगा। आज की माताओं को भी गंगोत्री के समान गर्भ से ही अपने पुत्रों एवं पुत्रियों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने वाली होना चाहिये।

अहा! ब्रह्मचर्य वह पदार्थ है कि जिसको पाकर के, जिसका पालन करके जीव 'ब्रह्म' बन जाता है। इसी से परब्रह्म को पा लेता है। मुनिवरो! उस महाकल्प (ब्रह्म की शतायु अर्थात् छत्तीस सहस्र बार सृष्टि की रचना और प्रलय हो, इतने लम्बे समय तक) पर्यन्त मुक्तावस्था में उस परम पिता की गोद में पहुंच कर परमानन्द का लाभ करता है।

जो लोग ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते उनकी दशा तो ऐसी

होती है कि जैसी कि एक बार महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने महाराजा राम से एक कीड़े को दिखाते हुए कहा था कि "जो ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते वे इस प्रकार कीड़े की योनि में जन्म लेते हैं। यह तीन जन्मों से कीड़ा बनता जा रहा है। इत्यादि।"

आज भी जो ब्रह्मचर्य से हीन मानव हैं वे भी इसी प्रकार कीड़े की योनि में चक्कर काटते हैं और चक्कर काटेंगे।

तो मुनिवरो ! माता गंगोत्री ने अपने एक मात्र पुत्र भीष्म से कहा कि "तू ब्रह्मचर्य से हीन होकर संसार का कीड़ा न बनना। तू राष्ट्र का सूर्य के समान महा तेजस्वी मानव बन। जैसे सूर्य प्रातःकाल उदय होकर तीन लोक में अपने प्रकाश से छा जाता है। तीनों लोकों को तपायमान करता है। महान् रात्रि के अन्धकार को समाप्त करके अपने दिव्य प्रकाश से मानव के जीवन को उच्च बना देता है। इसी प्रकार से पुत्र ! तू भी महान् तेजस्वी बन।"

"यदि तूने मेरे गर्भ से जन्म धारण किया है तो तू भी ऐसा महान् बन कि जिससे यह अपना सारा राष्ट्र उच्च बने, महान् बने। राष्ट्र तेरा नहीं है। यह परमात्मा का दिया हुआ है। हे पुत्र ! यदि तूने इस शरीर को और इस राष्ट्र को दूषित कर दिया तो तेरा जीवन न होने के तुल्य है।" मुनिवरो ! परमात्मा ने जो यह शरीर दिया है यह ऐसा रोगी या दोषी बनाने के लिये नहीं दिया है। महान् ! परमात्मा ने जैसा यह स्वच्छ शरीर दिया है वैसा ही स्वच्छ और स्वस्थ परमात्मा को प्रदान कर दो। नहीं तो मानव जीवन का कोई महत्व नहीं है, इस संसार में।

आज हमको माता गंगोत्री के ये वाक्य कण्ठ आ गए, जिनको हमने उच्चारण कर दिया। आज का यह हमारा मुख्य आदेश है। यदि हमको अपने जीवन को उच्च बनाना है तो ब्रह्मचर्य की पूर्ण रक्षा करनी चाहिए। परमात्मा ने ब्रह्मचर्य के रूप में ऐसा महान् पदार्थ दिया है कि इसको पा करके मानव सब कुछ पा लेता है। मुनिवरो! देखो, ब्रह्मचर्य को पा करके सारे विज्ञान को पा लेता है। प्रभु को पा लेता है। प्रकृति के कण-कण को जानने वाला यह जीव बन जाता है।

मुनिवरो! देखो, जब तक हम इस महान् ब्रह्मचर्य को नहीं जानेंगे, तब तक इस महान् प्रभु को, आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान दोनों को ही न जान सकेंगे। दोनों में किसी भी प्रकार से गति नहीं कर सकेंगे।

मुनिवरो! आज का हमारा यह आदेश है। अर्थात् माता गंगोत्री ने मृत्यु काल में ऐसा कहा है कि "हे पुत्र! तू हर प्रकार से ब्रह्मचारी बन। अपने जीवन को सूर्य के तेज के तुल्य बना।" इत्यादि।

मुनिवरो! उसने अपने पतिदेव से कहा कि हे पतिदेव! मेरा मृत्यु काल आ रहा है मेरे कुछ ही साँस रह रहे हैं। मैं इस समय परलोक को जा रही हूँ। हे भगवन्! आप मेरे स्वामी हैं। यह मेरा एक बालक है। परमात्मा की दया से न जाने कहाँ कहाँ से और कैसे हम तीनों का सम्बन्ध बन गया है। यह मिलाप हो गया है। आप राजा बन गए। मैं आपकी धर्म देवी बन गई। हम तीनों के मेल का, मनमंत (मनमत्त) होने का इतना ही काल परमात्मा ने दिया था। अब मुझे आज्ञा दीजिए मैं परलोक को जा रही हूँ।

राजा और राज्य के लिए ब्रह्मचर्य का महत्व

अच्छा भगवन् ! मेरा एक आदेश है। वास्तव में तो पत्नी अपने पति को क्या आदेश दे। पर शुभ आदेश देने में कोई किसी प्रकार की हानि नहीं है। उस समय मुनिवरो ! देखो, उसने मृत्यु काल में यह क्या कहा था कि "हे पति देव ! यदि आपको देखो, संसार की इच्छाएं जागृत हो जाएं तो आप द्वितीय संस्कार (विवाह) करा लेना। परन्तु यदि आपने संस्कार न कराया और कुविचार आपके बन गये और आपने राष्ट्र के किसी व्यक्ति को, किसी भी देव कन्या को किसी भी मधुमती को किसी भी प्रकार से भ्रष्ट कर दिया तो भगवन् ! यह राज आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जायगा।"

तो मुनिवरो ! उस महान् माता गंगोत्री ने अपने पतिदेव से कहा कि "आप भ्रष्ट न हो जाना। भगवन् ! यदि आप अपने मार्ग से भ्रष्ट हुए तो इस संसार की मृत्यु हो जायगी। राष्ट्र समाप्त हो जायगा। हे विधाता ! आपको परमात्मा ने पूर्व जन्म के उच्च कर्मों के आधार पर इतने बड़े समाज का आज राजा बनाया हुआ है। प्रजा ने आपको राजा के पद पर चुना है, तो आप भी प्रजा को भ्रष्ट न करना। भगवन् ! यदि आपके भ्रष्टाचार के कारण प्रजा में भ्रष्टाचार फैल गया तो यह आपका राज पद नहीं रहेगा। आपका राज पद दूषित हो जायगा।"

भगवन् ! मृत्यु समय मेरा केवल यही आदेश है। आपके समक्ष यही अनुरोध है। आप मेरे इस अनुरोध को अवश्य स्वीकार करें।

"भगवन् ! परमात्मा की कृपा से जनता ने आपके चरित्र को स्वच्छ-निर्मल समझ कर आपको राजा के पद के लिए

चुना है। आपको राजाधिराज बनाया है। यदि आप अन्तिम काल में राज्य को त्यागना चाहें तो जैसा परमात्मा ने स्वच्छ और निर्मल राज्य दिया है वैसा ही परमात्मा के समक्ष अर्पण कर देना।"

"हे भगवन् ! यदि आपने अपने रहते रहते अपने राष्ट्र को अपने चरित्र दोष से दूषित कर दिया, परमात्मा को दूषित राज्य अर्पण किया, स्वयं चरित्र से दूषित हो गए तो आप राजा नहीं रहेंगे, आप कीड़े के तुल्य बन जायेंगे।"

तो मुनिवरो ! देखो, यह उन महान् देवियों का आदेश है। पर आज उन माताओं को कहां से लाएं। इस काल में उन्हें कहां से खोजें ? जो मुनिवरो ! अपने पतियों को इतना सुन्दर आदेश देने वाली हों।

आज हमारा यह आदेश चल रहा है कि "आज मानव को परमात्मा ने जो स्वच्छ पदार्थ कर्म करने के लिए दिये हैं, परमात्मा ने जैसा स्वच्छ निर्मल जीवन दिया है, हमारा परम धर्म है कि परमात्मा को वैसा ही स्वच्छ एवं निर्मल जीवन और पदार्थ अर्पण कर दें। तभी हमारी मानवता है, मानवता की सफलता है। अन्यथा इस मानवता की कोई विशेषता नहीं है, कोई महत्व नहीं है।"

मुनिवरो ! माता गंगोत्री ने ऐसा आदेश देकर नमस्कार करके अपने प्राणों का त्याग कर दिया।

मुनिवरो ! राजा शन्तनु ने बड़े आनन्द पूर्वक नाना उत्तम सामग्री संचित करके नाना ब्राह्मणों के द्वारा विधि पूर्वक यज्ञ-कुण्ड में अपनी धर्म पत्नी का अन्त्येष्टि संस्कार वेद मन्त्रों के पाठ करके किया। उस विद्वान् ब्रह्मचारी ने भी अपनी माता

के अन्त्येष्टि संस्कार में वेद मन्त्रों का पाठ किया।

राजा शन्तनु बड़े आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगे। राजा शन्तनु के जीवन की शेष विशेषताएं कल उच्चारण करेंगे। आज तो हमें इतना ही आदेश मिला। कल महानन्द जी के शेष प्रश्नों का समाधान भी करेंगे। क्योंकि आज समय नहीं रहा है।

मुनिवरो! हम हमारे व्याख्यान में द्वापर युग का प्रमाण देकर आदेश दे रहे थे। परमात्मा की कृपा से उन महान् ब्रह्मचारियों ने उन महान् आचार्यों ने और उन महान् देवियों ने ऐसी उच्च शिक्षा देकर राज्य को उच्च बनाया था।

मुनिवरो! यदि राज्य को उच्च बनाना है और संसार को उच्च बनाना है संस्कृति का प्रचार करना है तो शिष्टाचार को उच्च बनाना होगा। विद्या का प्रचार और प्रसार करना है तो शिष्टाचार को उच्च बनाना होगा। जिस काल में ब्रह्मचारी होते हैं वही काल सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

अखण्ड ब्रह्मचर्य का शरीर पर अलौकिक प्रभावः—

देखो, उस महान् ब्रह्मचारी ने कैसा सुन्दर आदेश माता से पाया। बेटा! वही कौडली ब्रह्मचारी आगे चलकर के भीष्म नाम से पुकारे गए। आगे वे ही पितामह-भीष्म बन गए। बेटा! कैसा सुन्दर यह ब्रह्मचारी था। अरे! जिस समय महाभारत संग्राम में अर्जुन शस्त्रों का प्रहार उनके शरीर पर करते थे तो बेटा! भीष्म के शरीर से शस्त्र भी उछल जाते थे। बेटा! शस्त्र भी दूर भागते थे। उनकी त्वचा में प्रवेश नहीं कर पाते थे। बेटा! कैसा था वह ब्रह्मचारी।

मुनिवरो! देखो, उस समय अर्जुन ने एक वाक्य कहा था

कि "हे भगवन्! हे पितामह! आपने कौनसा पदार्थ पाया कि जिससे मेरे अस्त्र शस्त्र आप पर आघात क्यों नहीं कर पाते?"

ब्रह्मचर्य से मृत्युञ्जय बनना :–

उस समय भीष्म पितामह ने कहा था कि "हे पुत्र! हे बालक! मैंने माता के आदेश द्वारा उस अवस्था को पाया है कि जिससे मैं मृत्यु-विजयी बन गया हूँ। मैं चाहूँगा तो मेरी मृत्यु होगी, अन्यथा मेरी मृत्यु कदापि नहीं होगी।"

तो मुनिवरो! ब्रह्मचर्य को पाने में इतना महत्त्व है! जो ब्रह्मचर्य को पाता है वह परमात्मा को पा लेता है और परमात्मा को पा करके बेटा! सृष्टि के कण कण को जानने वाला मानव बन जाता है। वह मानव भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान दोनों का पाने वाला बन जाता है।

यह है आज का हमारा आदेश। बेटा! अब हमारा व्याख्यान समाप्त हो गया। कल समय मिलेगा तो और व्याख्यान देंगे। अब हमारा वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् वार्ता समाप्त हो जायगी।

धन्यवाद भगवन्! गुरु जी! आपने हमारे प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया।

बेटा कल दे देंगे।

हां! वह कल तो आपका आता ही रहता है और आता रहेगा। क्योंकि आपने एक काल में ऐसा कहा था कि "रावण जब मृत्यु शय्या पर आगया भगवन्! तो तब राम ने उससे राजनीतिक वार्ताओं को पाया था।

रावण ने राम से कहा कि भाई! मैंने कल ही कल में कुछ कार्य करने थे, वे कल ही में समाप्त हो गए। ऐसा ही

हमें प्रतीत होता है भगवन् ! आप भी कल ही कल में समाप्त हो जायेंगे। हिं, हिं, हिं, (हास्य)

अच्छा—हिं, हिं, हिं (हास्य)

अच्छा महानन्द जी ! धन्यवाद। कोई बात नहीं है। अच्छा बेटा ! चलो कल हो जायेगा।

हां, कोई बात नहीं भगवन् !

तो मुनिवरो ! अभी अभी महानन्द जी कैसा सुन्दर आदेश वर्णन कर रहे थे कि जिसमें कितनी मनमन्ता (मनमत्ता-हर्ष) आ रही थी। हृदय भी मनमन्ता मना रहा था। महानन्द जी के कैसे सुन्दर आदेश हैं। चलो, कल महानन्ह जी के प्रश्नों का विधि पूर्वक उत्तर दिया जायगा। अब हमारा आदेश समाप्त हो गया। कल हमारा आदेश वर्णन किया जाएगा।

गुरु जी ! कल हमारी एक इच्छा और है कि कल आप मधु शान्ति पाठ करें।

अच्छा बेटा ! कल का कल देखा जाएगा। तो भाई ! कल आएगा तो उच्चारण कर देना।

अच्छा देखा जायगा।

तो मुनिवरो ! महानन्द जी अब उच्चारण कर रहे हैं कि मधुशान्ति पाठ कल होना चाहिए। परन्तु यदि समय मिला तो मधुशान्ति पाठ करेंगे, और नहीं मिला तो नहीं करेंगे। अच्छा, अब वेदों का पाठ होगा, इसके पश्चात् हमारा व्याख्यान समाप्त हो जाएगा। वेद पाठ।



❀ ओ३म् ❀

श्री ब्र० कृष्णदत्त जी महाराज का ४ अप्रैल १९६२ को लोधी रोड, नई दिल्ली में दिया गया प्रवचन

देखो मुनिवरो ! अभी-अभी हमारा पर्यायण (वेदावलोकन) समय समाप्त हुआ। हम तुम्हारे समक्ष वेदों का मनोहर गान गा रहे थे, वास्तव में जब वेदों का गान गाया करते हैं तो ऐसी मनोइच्छा होती है कि गान गाते ही चले जांय ? यह ऐसा मनोहर पाठ है—जिससे मानव के हृदय में एक महानता आ जाती है और एक ज्योति प्रविष्ट होकर हृदय को आनन्दित कर देती है।

आज हम उस महान् प्रभु का गुणगान कर रहे थे जो विधाता हमारे जीवन का हर समय साथी बना रहता है और वह बना ही रहेगा—उस प्रभु की लीला आज हमें प्रत्यक्ष हो रही है। और मानव के लिए विचारणीय है कि जब तक वह अपने जीवन को उच्च नहीं बनाएगा तब तक वह दूसरे मानव को कदापि नहीं जान पावेगा। जैसे वेद का कथन है कि 'हे मानव, जब तक तू अपने को नहीं जानेगा, और जब तक अपने महत्व और मानवता को भली प्रकार नहीं समझेगा तब तक वह मानवता की कोई जानकारी नहीं रह सकता क्योंकि मानव-जीवन मनोहर होता है परन्तु मनोहर जीवन बनाने के लिए मानव को सुन्दर योजना बनाने की आवश्यकता है और जो

मानव सुन्दर योजना नहीं बनाता उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है।

जैसा कि हम कल के व्याख्यान में कह रहे थे कि मानव को हर प्रकार से ऊंचा बनना चाहिए। जैसे, हमारे आज के वेद-गान में माताओं के संबंध में बहुत सुन्दर रूप से कहा है कि जो माता अपने पुत्रों को योग्य बना देती हैं, आत्मा को माता के गर्भाशय में जो महानता और शिक्षा प्राप्त हो जाती है वह सर्वांग जीवन भर में मानव प्राप्त नहीं कर सकता।

महानन्द जी से हमें प्रतीत होता है, कि आज का समाज कैसा बनता चला जा रहा है। आज का समाज ऐसा बनता चला जा रहा है कि मानव में आस्था का अंकुर न रहा परन्तु अपने में बहुत उच्चता जान के अपने को बहुत ऊंचा मानने लगा है। आज का समाज या मानव तो ऐसा बन रहा है। परन्तु हमें इससे कोई प्रयोजन नहीं हमें तो अपना कार्य करना है। जिस परमात्मा की आज्ञा का पालन करना हमारा कर्तव्य है; हमें संसार की त्रुटियों पर दृष्टि नहीं रखनी। यदि आज हम महानन्द जी के कथनानुसार महानन्द जी के आदेशानुकूल; यदि संसार की त्रुटियों पर दृष्टि रखते हुए मानव के त्रुटिदायक जीवन पर दृष्टि बनाये रखें तो वह स्वयं त्रुटि दायक बन जाता है। ऐसा वेद मन्त्र आदि ऋषि और विद्वानों ने कहा है। परन्तु आज मानव की समस्या हमारे सामने आती है कि यदि दूसरों की त्रुटि को न देखेंगे तो यह संसार की जानकारी कैसे की जायेगी। उसका उत्तर यह है कि जो किसी मानव की संसार में जानकारी करना चाहता है तो पूर्व "आत्मनाहं" अपनी जानकारी करें इसके पश्चात् जिसकी जानकारी मानव चाहता है स्वयं हो जाती है।

वेदमन्त्र तो यह कहता है कि जो मानव दूसरों को जानना चाहता है वह अपने को जान ले। अपने को क्या? मानव को क्या? संसार को जान जाओगे।

यह जो परमात्मा ने हमारा शरीर बनाया है ऐसा बनाया है—जैसे यह ब्रह्मांड है इसमें सभी तत्व हैं सभी पदार्थ हैं। सूक्ष्म महाभूत भी हैं, देखो वह अग्नि भी है स्वर्ण जैसा हमारा यह शरीर है यह हमारा दूसरा पिण्ड भी इसी प्रकार बनाया है प्रभु ने। जब हम अपने पिण्ड को अच्छी प्रकार जान लेते हैं तो यह जो परमात्मा का बनाया हुआ ब्रह्मांड हमें प्रतीत हो रहा है बेटा! हमारे समक्ष एक, मन ऐसा पदार्थ है जो केवल इसकी जानकारी कर लेता है अन्तःकरण को शुद्ध बनाले तो यह महान् अन्तःकरण ऐसा है कि जो यह इतना ब्रह्मांड प्रतीत हो रहा है यह सब अन्तःकरण में समा जायेगा।

यह क्यों समा जायेगा? मुनिवरो! यह इतना ब्रह्मांड तो ऐसा है ऐसे ही हमारे अन्तःकरण में यह नाना संसार के दर्पण खींचने वाला दर्पण का आकर्षण करने वाला मन है। अंतःकरण में सबका दर्पण अर्पण कर देता है और देखो जो यह सर्वांग ब्रह्मांड प्रतीत हो रहा है बेटा! यह सब हमारे अन्तःकरण में विराजमान हो जायेगा।

तो मुनिवरो! जब जब मानव अपने अन्तःकरण को पवित्र बना लेता है और मन की जानकारी कर लेता है मन को अच्छी प्रकार जान लेता है तो वह इस संसार के मानव की त्रुटि नहीं देखता वह संसार को त्रुटियों का समूह बनाता है जो अपने ज्ञान के द्वारा देख लेता है वह अपने अन्तःकरण में देख लेता है कि यह मानव क्या करता चला जा रहा है। तो मुनिवरो! वेदमन्त्र में कहा है कि जो मानव दूसरों को जानना

चाहता है या दूसरों की क्रियाओं अनुमति को जानना चाहता है वह अपने को जान ले उसकी स्वयं पहचान हो जायगी। परन्तु बेटा ! जिस मानव ने अपने को नहीं जाना, भली प्रकार नहीं पहचाना और वह संसार की वार्ता करता चला जा रहा है बेटा ! उसकी वह वार्ता न होने के तुल्य है।

अच्छा आज का हमारा वेदपाठ क्या कह रहा था हम व्याख्यान करते हुए कहाँ जा पहुंचे। आज हम प्रभु से एक मनोहर रूप को पाने को जा रहे थे और हम क्या पाना चाहते थे, हम विधाता से आज के वेद पाठ में प्रार्थना कर रहे थे कि विधाता हमारे हृदय में, हमारे मस्तिष्क में हमारी जो 'धी' (बुद्धि) है उसमें आप कुछ ऐसे सुज्ञान को प्रविष्ट करें जो भगवान कभी समाप्त न हो, और उस ज्ञान को प्राप्त करके हम इस संसार से पार होजायं। हे भगवान हम महान् अधोगति में कदापि न जावें। हे भगवान आप तो हमारे दाता हैं, हमारी माता हैं। हमारी दो प्रकार की माता होती हैं एक जननी माता जो भौतिक माता होती है एक माता आप हैं। हे भगवान जब हम इस लौकिक माता को त्याग देते हैं और आपको माता बना लेते हैं, आप हमारी दूसरी माता बन जाते हैं उस समय भगवान हम प्रयत्न करते हैं तो एक काल ऐसा आता है जब माता की गोद सदृश आपकी गोद में पहुंच कर जो आनन्द प्राप्त करते हैं कि जैसे हमने सर्व ब्रह्माण्ड को विजय कर लिया हो। और माता एक जननी माता है जो गर्भाशय में धारण करती है जो अपने गर्भ में धारण कर हमारा पालन करती है और हमें जन्म देकर इस संसार क्षेत्र में नियुक्त कर देती है कि हे बेटा ! अब तुम इस संसार में कर्म करो, तो मुनिवरो ! यह हमारी दो माताहैं;वास्तव में तो हमारी तीन माता

हैं। एक पृथ्वी माता है, एक जननी माता है और तीसरी (तृतीय) प्रभु माता है। मुनिवरो देखो ! वह जो प्रभु माता है जो हम माता के आँगन में या माता की ज्ञान भरी लोरियों में लग जाते हैं तो वह इतनी मनोहर लोरियों को देता है कि हमें वह परमानन्द और माता के उस आँगन में जाकर हमें संसार की कोई इच्छा नहीं रहती। परन्तु जब हम जननी माता के गर्भ में होते हैं और उससे जन्म पाकर पृथक् हो जाते हैं तो कभी क्षुधा की इच्छा होती है तो कभी कोई अन्य। परन्तु वह माता वेद ऐसा कहताहै कि यदि जननी माता चाहे तो गर्भाशय में पुत्र को मोक्षद्वार पर ले जा सकती है। परन्तु वह कौनसी शिक्षा है, वह कौनसी महानता है मुनिवरो ! वेद में कहा है 'माता सुमति भूर्यश्च' वेद ऐसा कह रहा है कि माता वह पदार्थ है जो कि अपने गर्भ में बालक को गायत्री का जाप स्मरण करा देती है परन्तु वह कैसे कराती है—मुनिवरो हमारे समक्ष तो बहुत से इतिहास के वाक्य हैं, जो प्रगट करते हैं कि माता हमें यदि चाहे तो उस स्थान में पहुंचा दे, परन्तु देखो मुनिवरो ! आज का मानव, वह दृष्टि पाने में असमर्थ है।

हमें महानन्द जी से प्रतीत हो रहा है कि आज का मानव अपने लिए गड्ढा ढूंढ रहा है वास्तव में वह उस गड्ढे में चला जा रहा है, हमें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि संसार सद्गति को नहीं जा रहा परन्तु उस गड्ढे की ओर अग्रसर हो रहा है जो अधोगति का है। महानन्दजी किसी काल में ऐसा व्याख्यान देदेते हैं जो यह भाव प्रगट करता है। परन्तु हमारा जो आज का आदेश था वह क्या था कि यदि माता हमें चाहे तो उस स्थान में पहुंचा देती है—मुनिवरो यह इतिहास तो आपने सुना होगा, जो

वार्ताएं उस काल की वार्ताओं को आपके समक्ष प्रगट कर रही हैं।

मुनिवरो देखिये, महर्षि पारा मुनि को, महर्षि पारा मुनि की धर्मपत्नी उरेखा ने कहा था कि हे पतिदेव अब मेरे गर्भ स्थापन हो गया है और अब मेरी यह इच्छा है कि मैं जिस बालक को जन्म दूँ उसे गर्भाशय में ऐसी शिक्षा दूँ कि जिससे वह बालक संसार में अमर हो जाए। और हम उस माता उरेखा को देखें, एतदर्थ उसने क्या किया, महर्षि पारा की आज्ञानुसार, माता ने नित्यप्रति यज्ञ किया, उस महान् प्रभुदेव की याचना की और हर समय यह धारणा रहती थी कि हे प्रभु, हे महान् माता ! कि मेरे यह गर्भस्थ बालक आपके अर्पण है और तेरा स्मरण करने वाला हो यह बालक मेरा नहीं 'इदन्न मम' यह आपका है आप इसको ऐसा उच्च बनायें।

तो मुनिवरो ! जो माता गर्भ के स्थापना होते ही जिस माता कि यह धारणा होती है कि 'इदन्न मम' प्रभु यह आपका है और आपके ही अर्पण है।

तो मुनिवरो ! उस माता के कुछ समय पश्चात् ऐसा इष्ट बालक उत्पन्न हुआ और ऐसा 'इष्ट बालक' जिन्हें महर्षि-व्यास की महानता का पद प्राप्त हुआ, जब तक विश्व रहेगा महर्षि व्यास का नाम भी रहेगा। यह सब माता की महानता है यह सब माता का दिया हुआ है। यह माता का जिस समय संसार में आती है उस समय माता की योनि बनती है माता का शरीर बनाया जाता है उस समय प्रभु, गर्भाशय में अपना उपदेश देता है कि हे माता, तुझे मैंने देव कन्या की योनि प्रदान की है, तू संसार में जा और ऐसा महान् बालक उत्पन्न कर जो मेरी बनाई हुई सृष्टि को

पवित्र कर दे, जो मेरी बनाई हुई सृष्टि में स्वर्ग की रचना के तुल्य सुन्दर बना देवे। और जो मानव उसके सम्पर्क में आये वही महान् बनता चला जावे।

तो मुनिवरो ! यह माता वह, जो माता प्रभु दे। जो माताओं की भी माता है देखिये यह हमारी माता को शिक्षा दिया करती है, परन्तु आज का मानव तो कहां जा रहा है। देखो एक ऐसा काल था जिसमें एक समय महान दार्शनिक भी विराजमान थे, जिसमें देवर्षि नारद मुनि, महर्षि कुकुट्ट महाराज, सुनिक मुनी, महाराज वशिष्ठ मुनि, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि पापड़ी मुनि जी इन सब का दार्शनिक समाज नियुक्त हो रहा था और उस दार्शनिक समाज में यह वार्ता हुई। देखो कैसा तीनों युगों का वर्णन कर रहे हैं सत् युग, त्रेता द्वापर।

और जो कलियुग का समय आया। देवर्षि महर्षि नारद मगन होकर गाने लगे, उस समय दार्शनिकों ने कहा अरे भाई तुम गान क्यों गा रहे हो, वह बोले कि कलियुग काल ऐसा आयेगा कि जिसमें रसना और उपस्थ इन्द्रियाँ रहेंगी और सब इन्द्रियाँ ठप्प हो जावेंगी वा शेष इन्द्रियों के विषय समाप्त हो जायेंगे ! यह शब्द देवर्षि नारद जी ने कहे, यह कैसा दार्शनिक समाज था परन्तु यह क्यों आगे ऐसा काल आयेगा, ऐसा आज-कल का काल आयेगा कि वे दोनों इसी प्रकार के बन जायेंगे।

देखो मुनिवरो ! हमें आज यह विचार करना है जो महानन्द जी ने कहा है और देवर्षि नारद ने कहा वह महानन्द जी से प्रतीत हो रहा है। तो प्रत्येक काल में हर प्रकार के मनुष्य होते हैं परन्तु किसी में अधिक हैं किसी स्थान में सूक्ष्म परन्तु कलियुग का ऐसा समय है जिस में अधिक से

अधिक बन जाते हैं इसको कलियुग इसलिये कहते हैं कि यह कलों का बना है। दार्शनिक समाज ने तो ऐसा कहा है कि हे नारद ! इस काल को कलियुग इसलिये नहीं कहते इसका तात्पर्य ही और है । उन्होंने कहा कि क्या तात्पर्य है ? देवर्षि पापड़ी मुनि महाराज ने यह निर्णय दिया कि कलियुग उस काल का नाम है जिस काल में कलों से काम करना आरम्भ हो जायेगा उस काल को कलियुग कहते हैं, परन्तु महानन्द तो कहेंगे कि यह तो कई स्थानों में आया है कि कलों कार्य है और कलों से कार्य हो रहा है और होता रहेगा। पूर्व युग में भी होता था आज भी हो रहा है परन्तु देखो प्रगतिशील हो रहा है।

हमारा आज व्याख्यान क्या चल रहा था ? हम प्रारम्भ कर रहे थे कि माता वह पदार्थ है जो हमें ऐसा अच्छा बना देती है और उस योग्य हो जाते हैं हम व्याख्यान देते देते बहुत दूर पहुंच गये। हम कह रहे थे कि संसार क्या बन गया देखो माता की यह विशेषता होती है कि हमें उच्चता को पहुंचा देती है। मुनिवरो देखो ! हमने द्वापर के काल को देखा और कैसा देखा मुनिवरो ! देखो हम तो बहुत कुछ उच्चारण करने वाले थे।

मुनिवरो ! वह हमारा कल का आदेश था। हम माताओं की विशेषता कह रहे थे कि महाराज शान्तनु का संस्कार मछोदरी (मत्स्योदरी) से हुआ। अच्छा जब उनका मछोदरी से संस्कार हुआ, कोडिल ब्रह्मचारी जिसको गंगेशील कहते थे, वह गंगेशील महाराज कहाँ जा पहुँचे, मुनिवरो ! वह मछोदरी के समक्ष जा पहुंचे, उनसे कहा भगवन् आप अपनी कन्या को किसी के अर्पण कर दीजिये। मेरे पिता तुम्हारी कन्या को

विवाहित करना चाहते हैं। उस समय उन्होंने यह कहा कि कोडिल ब्रह्मचारी, तुम्हारे पिता का संस्कार तो कर सकते हैं परन्तु देखो ! मेरी कन्या की जो सन्तान होगी वह राज्य की अधिकारी नहीं होगी इसलिये इस कन्या को हम कदापि नहीं देंगे। उस समय कहा! महाराज मैं आज प्रतिज्ञा कर रहा हूं कि मैं संस्कार नहीं कराऊंगा और राज्य को कदापि नहीं भोगूंगा। उस समय उसने कहा महाराज, आप नहीं भोगेंगे तो आप की जो सन्तान उत्पन्न होगी ? ब्रह्मचारी ने कहा महाराज, आप भी मेरे पिता हैं वह भी मेरे पिता हैं। मैं सर्वांग जीवन ब्रह्मचारी रहूँगा, संस्कार नहीं कराऊंगा। उस समय मुनिवरो ! कोडिल ब्रह्मचारी ने यह नियम बना लिया, यह प्रतिज्ञा कर ली उस गंगेशील ने कि संस्कार नहीं कराऊंगा और न राज्य का अधिकारी बनूंगा जो तुम्हारी कन्या की सन्तान होगी वही राज्य की स्वामी बनेगी।

तो कुछ समय पश्चात्, हमने सुना है देखो ! उसने अपनी महान कन्या का संस्कार महाराज शान्तनु के साथ करा, वह कन्या बड़ी सुन्दर तथा महान थी, मुनिवरो ! देखो कुछ समय के पश्चात् हमें यह ज्ञात हुआ कि उस महान मछोदरी के दो बालक उत्पन्न हुए जो विचित्र थे, हां जब यह दो विचित्र वीर्य बालक उत्पन्न हो गये तो कुछ समय पश्चात् महाराज शान्तनु की मृत्यु हो गयी। मृत्यु के समय राजा शान्तनु ने अपने तीनों पुत्रों को बुला कर कहा हे पुत्रो ! जो तुमने प्रतिज्ञा की उसे भंग न करना, अब मेरे अन्तिम सांस चल रहे हैं, जैसे तुम्हारी माता गंगोत्री ने कहा—जीवन भर ब्रह्मचारी रहना। मेरा गर्भाशय तभी ऊंचा बनेगा, मेरा नाम भी ऊंचा बनेगा, मेरा राष्ट्र भी तभी अच्छा बनेगा। तो आज भी

मेरी यह इच्छा है। सब पुत्रों को शिक्षा देकर के तब राजा ने मच्छोदरी से कहा, हे पत्नी इस समय मेरा मृत्यु काल है और मैं मृत्यु को प्राप्त हो रहा हूँ। यह तेरा राष्ट्र है और ये तेरे पुत्र हैं। इस राष्ट्र में जितनी प्रजा है वह सब तेरे पुत्र समान हैं। तो मुनिवरो ! यह उच्चारण करके राजा शान्तनु मृत्यु को प्राप्त हुए, तो बड़े आनन्द पूर्वक उनका संस्कार (दाह) किया गया।

तब उस कोडिल ब्रह्मचारी ने विचित्र वीर्य दोनों को राष्ट्र का स्वामी बना दिया और वे राज्य का पालन करने लगे। उसके पश्चात् एक ऐसा काल आया जब उस मधुस्थल में यह कोडिल ब्रह्मचारी, माता मच्छोदरी को नित्यप्रति शास्त्रोक्त शिक्षा दिया करते थे ता उस समय उन दोनों पुत्रों के मन में पाप आया कि यह हमारी माता कैसी है यह कोडिल ब्रह्मचारी इसके समक्ष रहा करता है। जब उनके मन में यब पाप आया तो एक रात्रि के समय वह गुप्त स्थान में विराजमान होकर के उस शास्त्रोक्त वार्त्ताओं को सुनाने लगे तो उस रात्रि के समय ऐसा हुआ कि माता मन्दोदरी उस वार्त्ता को सुनते २ निद्रा में लीन हो गयी और उस निद्रा में उनका पग अपने आसन से नीचे आगया उस बालक ब्रह्मचारी ने सोचा ऐसे माता को रात भर बड़ा कष्ट रहेगा, और यदि तुमने भुजाओं को खींच कर ठीक किया तो यह बड़ा भारी पाप होगा तो सोचने लगे कि क्या करना चाहिये, तो देखिये मुनिवरो ! उस ब्रह्मचारी ने अपने मस्तिष्क से माता के भुजा को खींच कर यथास्थान नियुक्त किया दोनों पुत्र बड़े चकित हो गये और उन्होंने कहा—हम तो बड़े पापी हैं, रात समाप्त होने पर कोडिल ब्रह्मचारी के चरणों से लिपट गये और पूछा, भगवान् ! जिससे मनसा पाप हो जाये

तो उसे क्या करना चाहिये। तो कोडिल ब्रह्मचारी ने कहा यह वेदोक्त वाणी है कि यदि मानव से मनसा पाप हो जाये तो उसे अपने को अग्नि में दहन करना चाहिये उसमें पाप सहित अपने को समाप्त कर दे। तो उस समय उन्होंने प्रगट किया कि हमसे मनसा पाप हो गया है और हम अग्नि प्रविष्ट होने जा रहे हैं। उस समय कोडिल ब्रह्मचारी ने उपदेश दिया कि हे ब्राह्मणो, अरे राष्ट्र पुत्रो! यह तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं, अग्नि भी दो प्रकार की होती है एक तो भौतिक और दूसरी ज्ञानाग्नि। तुम अग्नि में क्यों प्रविष्ट हो रहे हो, अपनी ज्ञान रूप अग्नि में अपने मानस पाप को भस्म कर दो। जब यह ज्ञानाग्नि तुम्हारे समक्ष आयेगी तो उसको स्पर्श करते ही और ज्ञानाग्नि में डुबकी लगाने पर देखोगे कि तुम पवित्र हो गये हो। मानस पाप उसमें भस्म होकर समाप्त हो जायेगा। तो बुद्धि द्वारा तुम उस ज्ञानाग्नि को धारण करो।

तो उन दोनों ने ब्रह्मचारी की बातों को स्वीकार कर लिया, राष्ट्र का पालन करने लगे। यह विचित्र बालक हैं कुछ समय पश्चात् उनकी धर्म पत्नि से दो बालक उत्पन्न हुए। एक को पाण्डु कहते हैं और दूसरे को धृतराष्ट्र कहते हैं यह समय बहुत ही महान है यदि कल समय मिला तो व्याख्यान देंगे। अच्छा हम कह रहे थे, विचित्र वीर्य तो युद्ध में समाप्त होगये उनके दोनों पुत्रों में एक का नाम पाण्डु था और दूसरे धृतराष्ट्र नाम का बालक जो जन्मान्ध था यह तो मानव का भोग होता है। क्योंकि माताओं की मधुर आकृति होती है। उसकी बालकों की आकृति यह कैसा महान काल था द्वापर का, जिसमें ऐसे-ऐसे महान बुद्धिमान राष्ट्र में हो। कोडिल ब्रह्मचारी जैसे विद्वान जो ज्ञानाग्नि द्वारा,

अग्नि दहन से रोक कर मानसाग्नि की आस्था पर पहुंचाने वाले। उस समय कोडिक ब्रह्मचारी ने कहा था कि यदि ज्ञानाग्नि हमारे हृदय में प्रविष्ट हो जाये और उस ज्ञानोदय में यदि मानव मानव को देखें तो अज्ञानता का कारण नहीं बनता, अज्ञान का कारण तब होता जब मानव सब कुछ भूल जाता है। और ज्ञानाग्नि, अज्ञान के अन्धकार में विलीन हो जाती है। यह आज का हमारा आदेश है कि मानव को अपना विचार करना चाहिये कि वह कहां है।

अब इस विषय में महानन्द जी के कुछ प्रश्न होंगे, उनके प्रश्नों का उत्तर भी दिया जायेगा। गुरु जी आपने जो अभी २ आदेश दिया वह तो बहुत सुन्दर था हमारे अन्तःकरण को धोने वाला था। परन्तु हम एक और यह वार्ता स्वीकार नहीं कर सकते, आप सब बात पुनरुक्ति और रूपान्तर कर रहे हैं जैसे इस रूपान्तर में देखिये। हमने तो यह सुना है जैसे आपने कहा कि महर्षि पारा मुनि के वाक्य भी नियुक्त कर दिये। मन्दोदरी को व्यास जी की माता कहा और दूसरा वाक्य यह कि आपने यह सब कुछ सत्य कहा है। आधुनिक काल के अनुकूल भी, गंगेशील ने जो प्रतिज्ञा की वह भी सत्य है। आपकी एक और बात हमें मिथ्या प्रतीत हो रही है और यह है कि आपने तो यह कहा कि विचित्र वीर्य्य तो युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए। और दूसरे यह कि विचित्र वीर्य्य के दो बालक हुए जो आपने अभी कहा परन्तु हमने ऐसा सुना है कि भगवन् विचित्र वीर्य्य दोनों को जो मानसिक पाप हो गया था वह अग्नि में भस्म होगये थे; जंगल में जाकर के तो हमने गुरुदेव ऐसा सुना है कि जब कोई सन्तान न हुई तो माता मन्दोदरी ने अपने पुत्र व्यास को नियुक्त किया और कहा कि

हमारा तो राष्ट्र ही समाप्त हो रहा है और राज्य को भोगने वाला कोई नहीं। तुम किसी प्रकार से कोई प्रयत्न करो तो उस व्यास मुनि ने कहा कि जो तुम्हारे दोनों पुत्रों की धर्मपत्नी हैं, नग्न होकर मेरे समक्ष आ जायें तो उनके सन्तान उत्पन्न हो सकती है। तो गुरुदेव हमने ऐसा सुना है कि जब दोनों नग्न होकर व्यास मुनि के समक्ष गयीं तो उनकी दृष्टि की ज्योति से एक २ बालक उत्पन्न हुआ, और आपने उसका रूपान्तर क्यों कर दिया है।

अरे, इस मुख की वार्ता को भी स्वीकार करो। महानन्द जी पूर्व तो आपका यह वाक्य ही व्यर्थ है, और देखो तुम्हारे व्याख्यान के अनुकूल, क्या परमात्मा की कोई मर्यादा नियम आदि है कि नहीं? क्या किसी की नेत्र ज्योति से सन्तान उत्पन्न हो सकती है? इस प्रकार तो किसी शास्त्र वा शास्त्रों में नहीं लिखा मिलता, तो यह बेटा अवश्य किसी मूर्ख समाज की उपज है, और ऐसी वार्ता वहीं चल सकती है, यदि तुम कहो कि हम गुरुदेव जी के स्थान में या इस समाज, इस व्यक्ति को नियुक्त करके या अपनी इच्छा से कार्य्य चलाऐं तो तुम्हारा यह वाक्य यहां कोई स्वीकार नहीं करेगा, और बुद्धि मानों ने ऐसा भिन्न २ स्थानों में कहा है कि 'सत्य को ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये, जैसा जो शब्द हो उसको उसी प्रकार जानना विद्वानों को श्रेष्ठ है। ऐसा वेद में भी कहा है और महर्षि व्यास मुनि तो जीवन भर ब्रह्मचारी रहे, निद्रा को जीतने वाले, आगे चल कर उनका संस्कार हुआ था, उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। वास्तव में वह गृहस्थ आश्रम प्रवृष्टि का संस्कार है वा गृहस्थ में प्रविष्ट हुए थे। ऐसा तो हमने सुना है। परन्तु यह हमने कभी नहीं सुना कि ऐसा इस काल में कभी

नहीं देखा तो क्योंकि जिस राजा का राष्ट्र समाप्त होता चला जा रहा हो तो ऐसा पाया गया है पर यहां तो ऐसा हुआ ही नहीं ?

हमारा व्याख्यान चल रहा था कि उनके दो बालक उत्पन्न हुए परन्तु देखो वह कोडिल ब्रह्मचारी, जिसको गंगशील कहते हैं वह बड़े महान थे, उन बालकों को, उन पुत्रों को अपनी शिक्षा देने लगे और जो राष्ट्र पुरोहित होता था उसको इस पद पर नियुक्त किया जाता था, आचार्य पद पर। और व्यास मुनि राष्ट्र पुरोहित हुए। पारा मुनि ने भी इन दोनों बालकों को शिक्षा दी।

आगे कैसा काल आ रहा। और वह क्या उच्च काल था कि माता जिस प्रकार सन्तान को बनाना चाहें बना सकती हैं, यह उदाहरण उस वैदिक काल का है मुनिवरो ! राजा कुन्तेश्वर राजा थे और उनके केवल एक कन्या थी जिसका नाम कुन्ती था।

गुरु जी यह तो आप कल ही उच्चारण कर रहे थे यह तो आपकी तुकबन्दी हो गई और देखो आपने कुन्त राजा की पुत्री का नाम भी कुन्ती उच्चारण कर दिया।

अरे बेटा यह तो कोई वाक्य नहीं। गुरुजी ने कल भी कहा या मन्दोदरी नाम बताया था। अच्छा महानन्द जी विनोद की बातें तो फिर होंगी इस समय कृपा कीजिये, अच्छा मुनिवरो ! हम कह रहे थे कि 'माता ब्रह्मस्नेह' तो उनकी वह कन्या महान सुशील थी। इस प्रकार मधुर माता की तदनुरूप सुशील कन्या थी। तो उनको इच्छा हुई कि इसको इस प्रकार की विद्या और शिक्षा दी जाये जिससे यह ज्ञानवान और सुयोग्य हो, क्योंकि बिना ज्ञान कोई सुयोग्य नहीं बन सकता।

तब कुन्त राजा ने खोज की और भृगु ऋषि के पास पहुँचे और पूछा कि वृद्ध महान् आत्माओं से वह कोई शिक्षा पा सकते हैं। उस समय मुनिवरो राष्ट्र में महान बन था और उस भयंकर बन में करूड़ नाम के ब्रह्मचारी रहा करते थे ऐसा सुना जाता है परन्तु इतनी अवस्था होने से प्रजन्य नाम के ब्रह्मचारी आदित्य नामसे कहे जाते थे। वृद्ध राजाने सोचा मेरीकन्या यहां हर प्रकार से शिक्षा पा सकती है उस समय उनकी आयु २८४ वर्ष की थी। परन्तु ऋषि से निवेदन किया और अपनी इच्छा को बताया कि मैं अपनी कन्या को आपके आश्रम में नियुक्त करना चाहता हूं। ऋषि ने आज्ञा दी हमें स्वीकार है और वह कन्या उस आश्रम में रहने लगी। ऋषि ने बाल्यावस्था से व्याकरण का पूर्णज्ञान दिया और बाद में सब विद्याओं का बोध कराया। कुछ ही काल में वह कन्या सब विद्याओं से सम्पन्न हो गयी और फिर यौवन को प्राप्त हुई। और बहुत तेजस्वी ब्रह्मचारिणी सब विद्याओं में पारंगत हो गई।

उस समय कुछ ऐसा कारण हुआ कि वहां श्वेतमुनि आ पहुँचे। श्वेत नाम के ब्रह्मचारी ने सोचा-वह उस समय युवा थे, महान तेजस्वी थे। परन्तु यह माया मानव को दुर्भाग्य से कहां की कहां पहुँचा देती है और कहां तक इसको तुच्छ बना देती है।

उस महान् ब्रह्मचारी ने उस महर्षि के आश्रम में जब उस युवा, सुशील कन्या को देखा तो उनके मन में तीव्रगति पैदा हुई और उनके मन की जो आकृति थी उस अवस्था में जब उस कन्या ने उस तेजस्वी ब्रह्मचारी बालक को देखा तो उस काल में ऋतुमति थी, उन दोनों ने एक दूसरे को देखा और पुनः जब कुछ काल पश्चात् ब्रह्मचारी ने पुनः कन्या को देखा तो अनुभव हुआ कि उनसे ऋषिभूमि में कितना बड़ा मानसिक पाप हुआ

है, उस समय उसने ऐसा नियम बनाया कि मार्ग में जा रहा हूं और बारह वर्ष कोई अन्न का भक्षण नहीं करूंगा तब मेरा यह पाप शान्त होगा। क्योंकि यह महान् पाप जो मेरे अन्तःकरण में विराजमान हो गया है, आगे जन्मों में न जाने किन २ योनियों में प्रविष्ट होना पड़ेगा। इसलिये मेरा कर्त्तव्य है कि मुझे उपवास करना चाहिये और पर्वतों में भ्रमण करना चाहिये। वास्तव में उस पाप की उन्होंने जो अन्तःकरण द्वारा हो गया है उसकी क्षमा मांग ली और पर्वतों आदि का भ्रमण, उपवास रख कर आरम्भ कर दिया।

अब उस ब्रह्मचारिणी को ज्ञात हुआ कि तुमने महान् पाप किया है तो सोचने लगी क्या करना चाहिए और ज्ञान के कारण मन से पाप निकल गया था सो अपने गुरु से सब बताया और उनसे पूछा कि भगवन् अब मैं क्या करूं। तो गुरु ने कहा कि मैं क्या कर सकता हूँ अब ऐसा करो कि जब बालक उत्पन्न हो तो उसको ऐसी शिक्षा दो कि वह योग्य बने। ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।

उस कन्या ने गुरु आदेश अनुसार जब गर्भ में बालक था, तभी से सूर्य्य का जाप करना आरम्भ कर दिया और याचना आरम्भ की, कि यह बालक महान् बलवान योग्य विद्वान हो। तो उस कन्या के हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई कि जैसे सूर्य्य इन तीनों लोकों में अपने ताप और प्रकाश से उज्ज्वल है वैसा ही यह बालक हो।

तो मुनिवरो, उस कन्या के कुछ समय पश्चात् बालक उत्पन्न हुआ, और गुरु जी को बताया कि अब जब पिता के गृह में जाऊंगी तो बड़ा पाप होगा। अब मुझे क्या करना चाहिये, गुरुजी ने कहा तो अच्छा पुत्री तुम कुशा का आसन बनाओ उस

पर पुत्र को प्रविष्ट करके गंगा में तिलाञ्जली दे दो। उस समय उस महान् देवी ने क्या किया उस बालक को भीतर आसन लगा प्रविष्ट कर गंगा में तिलाञ्जली दे दी। और कहा हे गंगा ! यह बालक तेरा है मेरा नहीं। वह बालक बहते २ उसी श्वेत मुनि के आश्रम के पास जो गंगा के किनारे था देखा गया। उनके शिष्य मण्डल ने कुशा से उस बालक को निकाल कर अपने गुरु जो श्वेत नाम के थे उनके पास वे गये। तो उस ब्रह्मचारी के आगे उसी ब्रह्मचारी द्वारा उस बालक ने शिक्षा पाई। आगे बेटा हमारा व्याख्यान था कि उस माता ने सूर्य्य के तप से तथा प्रार्थना से जो बालक को तेजस्वी तथा बलवान् बनाने की, की थी, और उसे गंगा में प्रविष्ट कर गुरु के आज्ञानुसार गंगा में त्याग दिया—भगवान् से प्रार्थना की और तब गुरु ने आदेश दिया कि अब तुम एक वर्ष पर्यन्त कोई अन्न भक्षण के रहित भगवान् से प्रार्थना करो जिससे इस पाप से क्षमा पाओगी।

तो उस देवीने एक वर्ष पर्यन्त वनस्पति आदिका आहार किया और अन्न का त्याग कर गायत्री का जाप तथा वादन किया उससे उसका पाप क्षमा हो गया। यह है हमारा आज का आदेश, जिस पर मुनिवरो आपको विचार करना चाहिये। कि हमारी दो माताएं तो यह हुईं और वास्तव में तीन हैं और जननी माता यदि चाहे तो बालक को गर्भाशय से ही शिक्षा देकर मोक्ष द्वार तक पहुंचा सकती है।

जैसे व्यास मुनि जी की माता ने उनको कैसा महान् बना दिया कैसा परिपक्व बनाया कि अन्तःकाल तक वेदों का पाठ शास्त्रों और गायत्री का पाठ करते रहे। यह हमारा आज का आदेश है।

हमारे व्याख्यान का अभिप्राय है कि जैसा वाक्य है उसको

वैसा मान लेने में हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

गुरु जी यह तो आपने और भी भ्रान्तिजनक बात कह दी, उच्चारण कर दिया । हमने ऐसा सुना है कि ऋषि के स्थान पर जब वह कन्या रहा करती थी तो दुर्वासा मुनि ने इनको भय दिया। सूर्य का जाप तो विनोद है। क्यों अभी तो आपको जाना नहीं और विनोद की बात तो कल होनी थी, और हमारे प्रश्नों का उत्तर दीजिये।

अरे अब समय नहीं। जैसी आपकी आज्ञा। अरे हमने कहा है कि कल तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देंगे अब समय नहीं। अच्छा भगवन् जैसी आपकी आज्ञा, तो देखो मुनिवरो! महानन्द जी प्रश्न कर रहे थे और अब समय नहीं कल हमारा जो वाक्य होगा उसमें पूर्ण रूप से वर्णन होगा और कुछ हमारा दार्शनिक विषय होगा। अब हमारा व्याख्यान समाप्त होगा, इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त होगी? वह जैसे भगवन् तुम्हारी इच्छा वही करोगे। बेटा, मधु पाठ करेंगे और कल ऐसा करेंगे कि प्रारम्भ में मधु पाठ कर देंगे तुम्हारे समक्ष। अच्छा भगवन् जैसी आपकी इच्छा। आपकी प्रार्थना को स्वीकार करें। हम तो प्रार्थना ही कर सकते हैं। प्रार्थना को स्वीकार करना न करना यह तो आपका ही कर्त्तव्य है। परन्तु अब सब वार्त्ता समाप्त कर देते हैं।

अच्छा मुनिवरो! अब हमारा आदेश समाप्त हुआ। कल हमारा आदेश इससे आगे उच्चारण होगा। अब वेदों का पाठ होगा और इसके पश्चात् हमारी वार्त्ता समाप्त होगी।

—:(०):—

* ओ३म् *

श्री ब्र० कृष्णदत्त जी महाराज का दिनांक ६ अप्रैल को विनय नगर में दिया गया प्रवचन

१—मानव जीवन, शुक्ल पक्ष कृष्ण पक्ष के समान है।
२—मानव जो व्रत धारण करे वह पूर्णता से करना चाहिए।
३—नारद रूपी मन को वश में करना चाहिए।

—सम्पादक

देखो मुनिवरो! अभी अभी हमारा पर्ययण समय समाप्त हुआ। हम तुम्हारे समक्ष वेदों का मनोहर गान गा रहे थे। यह तो आज तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि जिन वेद मन्त्रों का हम आप के समक्ष पाठ कर रहे थे, उन मन्त्रों का वेदों ने किस महानता से गायन किया है। उसमें कैसा माधुर्य्य था, कैसी सुन्दरता है, उस वेद पाठ में कैसी मधुर शिक्षाएं दी हैं कि आज हम उस विद्या को प्राप्त कर अपने जीवन को कैसा सुन्दर बना सकते हैं। आज के वेद–पाठ में हमें यह प्रतीत हो रहा है कि उसमें कोई विद्या ऐसी नहीं कही जो अव्यवहारिक हो।

परमात्मा ने वेदों में सर्व विद्या का प्रसार किया है जिससे मानव वा संसार का तथा लोक लोकान्तर वासियों के जीवन का हर प्रकार से विकास हो सके। आज के वेद मन्त्र यही मधुर शिक्षाएं प्रदान कर रहे थे। वह परमात्मा कैसा महान और कैसा देवों का देव है जो हमें इन सर्व विद्याओं को प्रदान करता है और उनका ज्ञान कराता है। इन मन्त्रों में हम, प्रभु की याचना कर रहे थे और उच्चस्वरों से गान कर रहे थे कि परमात्मन् हमें ऊंचा बनाने वाले हैं, आपकी इन सुन्दर योजनाओं से महान् दुःखसागर से तर कर आपकी शरण चले आते हैं।

इन मनोहर मंत्रों में हम गान कर रहे थे, हे महान विधाता! हमारे लिये यह कैसा अद्भुत तथा सुन्दर संसार रचा है। यही आज के वेद पाठ में वर्णित किया है।

एक समय देखिये, महाराज विष्णु अपने आसन पर विराजमान थे। आदि प्रजा, महाराज विष्णु के समक्ष पहुँची और निवेदन किया कि भगवन् हम क्या करें? हमें कोई उपाय बताइये। उस समय विष्णु भगवान् बोले कि संसार में जाओ और उच्च कर्म करो और उस महानता को प्राप्त करो।

एक समय देवर्षि नारद मुनि ने भी यही प्रश्न किया था। वह देवर्षि नारद, मृत्यु मण्डल से भ्रमण करते हुए, भगवान नारायण के समक्ष जा पहुंचे और बोले कि 'मृत्युलोक के मानव बहुत ही दुःखित होते जा रहे हैं और दुःख सागर में डूबे जा रहे हैं। उनके कल्याण के लिये भी कोई योजना बनाई है। तब भगवान् नारायण ने कहा कि जाओ प्रजा को आदेश दो कि पूर्णिमा

का व्रत धारण करें, उससे वास्तव में मानव समाज का कल्याण होगा।

देवर्षि नारद ने जब यह संदेश मृत्युलोक पहुँचाया तो प्राणियों ने पूछा कि भगवन् यह पूर्णिमा का व्रत कैसा होता है ? तो नारद जो पुनः नारायण महाराज के पास पहुंचे और पूर्णिमा व्रत का विवरण पूछा तो नारायण महाराज बोले कि जिस व्रत को धारण करो उसे पूर्णता से करो, जैसे भी नियम बनाओ वह ऐसे पूर्ण हों जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा पूर्ण कलाओं से युक्त होता है। यही पूर्णिमा का व्रत है।

और जो मानव व्रत धारण कर उसको सम्पूर्ण रूप से नहीं करता तो उसका जीवन ऐसा होता है, जैसे एक मानव की नौका भंवर में पड़ी हुई हो, और उसका जीवन ऐसे डगमगाया करता है भंवर में डगमगाती नौका सदृश। इसको पूर्णमदः- कहते हैं ?

अच्छा मुनिवरो ! आज हम को ऐसा व्रत धारण करना, और अपने नियम इस प्रकार पूर्ण बनायें कि जिससे हमारा जीवन उच्च तथा महान् हो। हम विधाता से यही याचना किया करते हैं। जैसे कि जब तक हम इस संसार में जीवित रहेंगे हम कदापि मिथ्या उच्चारण नहीं करेंगे। यही पूर्णिमा का कृत्य है। इन्हीं का नाम व्रत है। और जैसे हमने पूर्व स्थान में कहा था कि अन्न का त्याग, क्षुधा से पीड़ित होना, उपवास करना आदि से कोई महान् लाभ नहीं होता, जो हम, पूर्ण, पूर्णमदः करेंगे, जैसे कि पूर्णिमा के चाँद में पूर्णता होती है, तभी हम अपने जीवन को पूर्ण बनाने में समर्थ हो सकते हैं। किसी भी कार्य्य को अधूरा न छोड़ कर उस महान् व्रत को धारण करेंगे, तभी हमारा व्रत सफल वा हमारा वास्तविक

कल्याण दायक हो सकता है।

जब नारद जी नारायण महाराज के समक्ष थे तो, उन्होंने कहा कि देवर्षि, मृत मण्डल तो महान दुःख का सागर है। इससे निस्तार के लिये यह महान योजना बनाई है कि जो आगे कर्म करने हैं वह शुभ करने हैं, तो इस प्रयत्न में ही मानव का कल्याण निहित है। देखो जैसे, अजयेध यज्ञ करें, गोमेध यज्ञ करें, तो यह तो भौतिक यज्ञ हो गये। परन्तु हमें आध्यात्मिक यज्ञ भी करना चाहिये।

आध्यात्मिक यज्ञ का अर्थ, जिसमें हमारी आत्मा का विकास हो, जैसे अग्नि ऊपर को उठती चली जाती है ऐसे आत्मा को ऊपर उठाने का यत्न करना चाहिये। जिसका जैसा आचरण होगा वैसा ही वह उससे सम्बन्धित रमण करता है, जब यह आत्मा ऊपर के लोकों में भ्रमण करता है, और अच्छे कर्म में रत रहता है तो वह उन चन्द्रादि, महान उच्च लोकों में पहुंच जाता है।

ऐसे ही जहां महाराज विष्णु का राज्य है विष्णु लोक कहलाता है वह सूर्य्य मण्डल भी कहा जाता है, जहाँ देवर्षि नारद पहुंचे हमने पीछे कई स्थानों में कहा है।

मुनिवरो ! विष्णु का अर्थ जो हमारा पालन पोषण करने वाला है जो सब को नियन्त्रण में रखने वाला है परमात्मा। विष्णु नाम सूर्य का भी है, परन्तु हम तो लोकों का वर्णन कर रहे हैं तो विष्णु लोक से अभिप्राय जहां विष्णु राज्य कर रहे हैं, जहां नाना प्रकार की महान योजनाएं बनती हैं, जो, पवित्र तथा तपस्वी आत्माओं का आवास है।

वहां अग्नि के परमाणुओं से निर्मित शरीरों में आग्नेय आत्माएं रहती हैं वहां की आत्माओं का दार्शनिक समाज

विद्यमान है जो दार्शनिकता से विचार करती है वहां क्लिष्ट आत्माएं नहीं होतीं।

इनसे भी आगे बृहस्पति लोक माने गये हैं। इन मधुलोकों में पहुंचकर इन से भी ऊपर को मधुलोकों का स्थान है जहां नाना भगवन्ती योनी हैं। भगवन्ती योनि उसको कहते हैं जिसको गंधर्व अनुमति लोक कहा जाता है। यहां बृहस्पति को गंधर्वलोक कहा जाता है। जहां रहने वाले गंधर्व हों वह गंधर्वलोक कहलाता है

और श्रेष्ठ कर्म करते हुए शुद्ध आत्माएं, लोक, लोकान्तरों में भ्रमण करती हुई प्रभु को, परमात्मा को प्राप्त होती हैं।

जैसे मानव योगी समाधिस्थ होकर, मूलाधार में जाता है, तो नाभिचक्र, हृदयचक्र, कण्ठचक्र में जाता है और फिर त्रिवेणी चक्र में होता हुआ आगे ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचता है, और आगे शून्य चक्र में रमण करता हुआ, यह आत्मा भ्रमण करता हुआ पृथ्वी मण्डल से आग्नेय सूर्यादि लोकों में पहुंचाता है, जहां विष्णु समान तेजस्वी आत्माएं ही निवास करती हैं !

यदि हम चाहें तो इस प्रकार हम आत्मा के आधार से, विष्णु लोक में पहुँच विष्णु समान विष्णु बन सकते हैं। विष्णु ज्ञानी को कहते हैं, जो परमात्मा के गुणों को धारण करने वाला है, जिससे सब का पोषण होता है, विश्वन्ति शब्द से जिस विष्णु शब्द की रचना हुई है उच्च कर्म करने वाला इस प्रकार विष्णु कहा जाता है।

वेद पाठ के मन्त्रों में स्थलर पर इन्हीं सौन्दर्यमत्ता का पाठ किया है। तो हमने जैसे कहा है कि देवर्षि नारद जब नारायण महाराज के समक्ष पहुंच गये तो उन्होंने कहा—जो मानव मेरे

व्रत को पूर्ण नहीं करेगा तो उसका जन्म अधूरा रह जायेगा। इसलिये मानव को मेरा यह सन्देश है कि मेरी वेदवाणी के अनुसार उस पूर्णता को प्राप्त करने के अर्थ व्रत धारण करें और पूर्णिमा के चाँद के सदृश अपने जीवन को पूर्ण बनायें।

कैसा अलौकिक ज्ञान है, परमात्मा का। प्रत्येक पदार्थ और उनके सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु हमें यही पूर्णता का ज्ञान दे रहे हैं।

परन्तु देखिये चन्द्रमा का प्रकाश घटता बढ़ता रहता है, यह क्यों होता है ? इसके उत्तर में हमारे दार्शनिक समाज में जो आदि ऋषियों का नियुक्त हुआ, कहा है कि लोमश मुनि महाराज ने तत्त्व मुनि महाराज से एक प्रश्न किया। उस दार्शनिक समाज ने कहा कि यह परमात्मा का अलौकिक नियम है, कि चन्द्रमा की शक्ति घटती बढ़ती रहती है, इसी नियम से चन्द्रमा महान् शीतलता तथा वनस्पतियों तथा पृथ्वी के अन्न का पोषण करता है और यदि इसकी कलाएं, घटे न तो सदैव शीतलता ही होने से किसी वनस्पति आदि का उत्पन्न होना असम्भव हो जायेगा।

तो दूसरे दार्शनिक ने कहा, नहीं केवल यही कारण नहीं, कुछ और भी है, इस चन्द्र की कलाएं जिस परमात्मा में रमण करती हैं, जहाँ से आती हैं, उसकी महान् शीतलता उसी में समा जाती हैं यह उस प्रभु की अलौकिकता है।

तब इसमें शमीक मुनि तथा मार्कण्डेयादि महर्षियों ने कहा और महान् प्रमाण उपस्थित किये कि हमने तो जो भौतिक विज्ञान के अनुकूल कुछ ऐसा पाया है, कि रावण के पुत्र नारायण तक जब सूर्य की ज्योति जाती है, तो वह उसके

आधीन है और उस ज्योति से प्रकाशित होकर पूर्णता को प्राप्त होता है और पुनः जब कलाएं घटती हैं तो उसी में समा जाती हैं।

तब किसी अन्य मुनि ने कहा कि यह वाक्य भी माननीय नहीं हमने तो यह सुना है कि सर्व सृष्टि सब परमात्मा के आधीन हैं, जब परमात्मा के आधीन है तो सूर्य के आधीन कैसे बन गया।

इस पर आदि दार्शनिकों ने कहा कि यह प्रमाण सिद्ध है कि सर्व संसार परमात्मा के, परमपिता के आधीन है परन्तु भौतिक जगत् में देखा जाता है कि, माता-पिता, जननी भी होती है और पिता भी, जो महान् हमारा लालन-पोषण करता है ऐसे ही भौतिक सृष्टि में, सूर्य्य चन्द्रमा का पिता के समान है, जो अपनी महान् किरणों से उसका पोषण कर उसको उच्च बना देता है। तो इन सब में परमपिता, परमात्मा ही है, और प्रकृति तो सब की माता के समान है।

परमात्मा से यह सब प्राण आ रहा है, सविता सत्ता आ रही है और यह सविता बन हर प्रकार से लाभ पहुंचा रहे हैं।

तो दार्शनिकों ने कहा जब सूर्य, चन्द्र का पिता है, तो परस्पर समीप क्यों नहीं हो जाते।

इसका उत्तर दार्शनिकों ने दिया कि चन्द्र सूर्य मण्डल का निचले भाग में हैं, यह सूर्य का अधिकारी क्रम है कि सूर्य की ज्योति से क्रमशः बढ़ता हुआ, उसकी किरणों से पूर्णता को प्राप्त होता है तो पूर्णिमा का चन्द्र कहलाता है।

अब देखिये वेद ने कहा है कि मानव तेरी अवस्था भी ऐसी ही है, जो परमात्मा ने बनाई है। दो पक्षों के समान,

हमारे लिए विचारणीय है; एक शुक्ल पक्ष समान जिसमें मानव का उत्कर्ष होता है, और एक कृष्ण पक्ष सदृश जिसमें अवनति हो जाती है।

बेटा! आज मानव का जीवन; चन्द्र के शुक्ल पक्ष के समान पूर्ण हुआ बैठा है, परन्तु कल प्रतीत नहीं, इसका कारण कैसे बन जाये, कौन सा काल इसके समक्ष आये, जो मानव आज राजा बना बैठा है कल को पता नहीं भिक्षुक बन जाये! यह उन्नति वा अवनति के दो भेद हैं, जो साधन रूप है, जिस पर दृढ़ता पूर्वक आचरण से, उच्च कर्त्तव्य के पालन से वह उस पूर्णता को धारण रख सकता है और सूर्य की तरह सर्व जगत को अपने प्रकाश से आलोकित कर सकता है।

जैसे मुनिवरो! किसी ने देखा युधिष्ठिर को; वह उस लाक्षा गृह में थे वहां से बच गये और अपने कर्त्तव्यों पर दृढ़ रहे। उनका भाग्य कर्म उच्च था, कि फिर महाभारत के संग्राम में विजयी हुए। आज महाराज युधिष्ठिर, धर्मपुत्र के नाम से कहे जाते हैं, यह उनके महान् उच्च कर्म की महानता थी।

तो हम कह रहे थे कि मानव के, दो पक्षों के समान, कृष्ण पक्ष, कठिनाइयों का काल है; जिसका अन्त उज्ज्वल शुक्ल पक्ष में होता है जो बहुत ही सुखदायक होता है, सुविधाएं प्राप्त होती हैं। इस प्रकार मानव को आपत्ति काल में दृढ़ रहना अपने कर्त्तव्य को पालन करते हुए, शुभ कार्य के ऊपर दृढ़ निश्चय रखते हुए आगे बढ़ना चाहिए, तो उसमें पूर्ण चन्द्र के तुल्य पूर्ण प्रकाश होता है।

अच्छा देखिये हमारा आज का वह दार्शनिक विषय यह था कि चन्द्र में जो भी कान्ति वह सब आदित्य, सूर्य जनित

हैं। परन्तु परमात्मा की सृष्टि तो अनन्त के सदृश है, वेदों में ऐसा ही कहा है कि उस अनन्त परमात्मा की सृष्टि में तो अनेक सूर्य हैं।

वह सूर्य्य कहाँ २ प्रकाश कर रहे हैं, यह तो एक दार्शनिक विषय है। हम जितना भी आगे बढ़ जायें परन्तु हमारी बुद्धि तो विचलित हो जाती हैं, कि कैसे महान् परमात्मा ने सब की सब विद्याएं कैसे वेदों में प्रविष्ट कर दी हैं। यह भी तो साथ साथ परमात्मा ने एक आत्मा के लिए कितनी सुविधाएं दे दी हैं।

मुनिवरो ! आज महानन्द जी प्रश्न कर रहे थे कि हमने जो असंख्य सूर्य्य होने का कहा है यह कौन से वेद का प्रमाण है ? कौन ऋषि का इसमें प्रमाण है ?

तो इसका उत्तर यह है कि वेदों का स्वाध्याय करो और अपने ज्ञान को बढ़ा कर अपने को श्रेष्ठ मानव बनाओ, तो महानन्द जी कहेंगे कि आपने कौन से वेदों का स्वाध्याय किया है जो आप उच्चारण कर रहे हैं ? तो इसका उत्तर यह है कि वेदों में अनेक मन्त्रों में आया है कौन कौन से मन्त्रों की सूची निर्देश की जाये, अन्य मन्त्रों में भी आया है यदि आगे फिर कभी समय मिला तो उनकी पूर्णतया व्याख्या कर देंगे ?

अभी २ हमारा आदेश चल रहा था कि इस मानव का उत्थान करने के लिए, परमात्मा का बनाया प्रत्येक पदार्थ मानव के जीवन का सूचक है। आज मानव जीवन का एक ऊंची योजना बनाने का महान् साधन है। मानव को दृढ़ रहना चाहिये और इसी से वह चन्द्र की पूर्णता सदृश घटता बढ़ता हुआ पूर्णता की पूर्ण कला के चन्द्र के समान पूर्ण हो जाता है,

मानव को उच्च बनना ही उसका कर्त्तव्य है जो अतीव सुन्दर योजना है।

हम कह रहे थे कि विष्णु भगवान् सूर्य्य मण्डल के राजा हैं, और प्रजा का शासन करने वाले हैं। दार्शनिकों ने कहा है कि देखें वह कितना महान् शासक है, कितनी भली प्रकार अपनी पूजा तथा इस संसार का पालन कर रहा है उसको महान् भू माना गया है, वह देखिये अन्तरिक्ष को तपायमान करता हुआ इस संसार को भी अपने अद्भुत आलोक से तपायमान कर रहा है, और इसके आगे अपने मधु लोकों को भी तापित कर रहा है, वह तीनों लोकों को तापित कर रहा है, उसका तेज कितना मधुर है और कैसा सौन्दर्य है इसमें। कल का विषय और भी आगे बढ़ गया है, कि कहां-कहां, कितनी दूरी पर स्थित यह सूर्य मण्डल है और कौन कौन कैसे पाथिक।

देखिये, यह पृथ्वी मण्डल कैसा महान् है और अच्छा है, किस २ लोक में ऐसी पृथ्वी समा जाती है यह तो कल का विषय होगा, जो अत्यन्त गूढ़ है और समय मिलने पर कल तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देंगे।

तो हमारा आज का आदेश था कि देवऋषि नारद जब महाराज नारायण के समक्ष पहुँच गये तो उन्होंने कहा यदि तुम्हें मृतमण्डल को सुखी करना है तो प्रत्येक मानव पूर्णिमा का उपवास किया करे यह शिक्षा दो और हर प्रकार से जीवन को उच्च बनाने की धारणा करें।

तो मुनिवरो ! नारद नाम मन का है, नारद नाम के ऋषि भी हुए हैं। तो यह मन जब नाना प्रकार के विषयों को त्याग-कर, आत्मा के समीप हो जाता है तो यह मन, उस नारायण,

स्वामी, से अपना सम्बन्ध बना लेता है तो उस समय नारायण महाराज कहते हैं कि "हे मन तू तो बड़ा उचंग है तेरी मनोहरता का कोई प्रमाण नहीं" संसार को सुखी बनाने का यह एक मात्र आदेश है कि पूर्णिमा का व्रत धारण करें। यह उपदेश उस नारायण, स्वामी ने नारद (मन) को दिया तो नारद इस संसार में आकर उपदेश देता है कि जो मानव का हृदय पवित्र बनाता चला जाता है वह प्रत्येक मन को पूर्ण बनने का आदेश है, अन्यथा किसी प्रकार मानव का जीवन ऊंचा नहीं बन सकता। यह मन रूपी नारद मन ही है। यह नारद किसी समय मानव को ऊंचा बना देगा, और यदि मन रूपी नारद को स्थिर नहीं करोगे तो एक समय वानरों वाली आकृति बन जाएगी, और किस प्रकार बनेगी, ऐसे एक समय नारद जी चञ्चल हो गया और वानर वाली आकृति बन गई थी। ऐसे यदि मन बस में नहीं किया तो वह तुम को बानर तक बना देगा।

तो आज हमें विचार करना चाहिए कि मानव को बहुत उच्च बनना है, तो नारद नाम के मन को नारायण की सभा में प्रविष्ट होकर, और यह उपदेश लेकर, स्वतः उच्च बनेगा और शेष संसार को भी उच्च बनायेगा। तो यह विषय जब समय होगा, किसी दूसरे समय इसकी व्याख्या करेंगे, और हम कह रहे थे कि हमें विचार करना है कि हमें कहां पहुंचना है और कहां पहुँच चुके हैं और हमारा गन्तव्य क्या था, आज वह नारद शब्द नहीं रहा, आज जो कहा, वह नारद रूपी मन है।

परन्तु यह निर्णय कर लेवें कि परमात्मा को नारद क्यों कहा है, परमात्मा के सदृश यह नारद, मन, लोक, लोकान्तरों में व्याप्त हो जाता है, और कोई भी स्थान ऐसा नहीं जहां पर-

मात्मा न हो, तो इस प्रकार देखे कि इस मन को जो प्रत्येक स्थान में पहुँच जाता है नारद ने कहा है जो एक क्षण भर में करोड़ों योजन की बातों को अन्तःकरण में विराजमान कर देता है तो इस अन्तःकरण में अनेक चित्र खिंच जाते हैं, ब्रह्मलोक की वस्ती हमारे समक्ष आ जाती है।

देखिए द्वापर काल की वार्ताएं आज हमारे मन रूपी नारद में विराजमान हो रही हैं तो जैसे सर्वत्र व्यापक परमात्मा सब जगह विराजमान है तो उसी प्रकार, शरीरमें यह मन एक प्रकार से नारद है जिसको यदि वश में नहीं किया गया तो इस मानव शरीर का कोई महत्व नहीं रहता।

देखो बेटा! हम आदेश दे रहे थे और उस प्रभु की याचना कर रहे थे, कि परमात्मा ने देखो जो पदार्थ बनाये हैं वह हमारे जीवन को उच्च बनाने के लिए हैं जैसे सूर्य, चन्द्र, हमारे जीवन के सूचक हैं, जैसे सूर्य प्रातः समय से लोक लोकान्तरों को तपित कर रहा है, इस प्रकार हमारा यह शरीर रूपी जीवन हमको प्राप्त हुआ वह मानो, परमात्मा ने, हमको अपना तथा सबका उपकार करने के लिए दिया है, जीवन को उच्च बनाने का यह महान् कर्तव्य हमें सौंपा है। इस महान् कर्म्म में सब वस्तुओं का सत उपयोग का आदेश है, और जो इसका दुरुपयोग करते हैं तो हमारे जीवन को कोई महत्व नहीं रहता।

और अब द्वापर काल की कुछ बातें कह रहे हैं, द्वापर काल में महाराज पाण्डु के महारनी कुन्ती के तीन सन्तान उत्पन्न हुईं, तो माता कुन्ती ने उनको, कैसे महान् बालकों को जन्म दिया और कैसे उन्हें उच्च बनाया? अपने ज्ञान से, ऐसी शिक्षा दी कि वे महान् हुए।

एक काल था, जब मदीन राजा के यहाँ मधु कन्या थी। उसका स्वयंवर हुआ, राजाओं को निमन्त्रण भेजे गये कि मेरी कन्या का स्वयंवर

उस महान् राजा के यहां कैसे वैज्ञानिक थे, उन्होंने एक मछली को बनाया और उसको ऐसे यन्त्र में रखा। जिससे कुछ ऐसी महानता का प्रमाण मिलता है कि एक क्षण भर के समय में मानो इतने समय में बारह पलक मार सकता हो, उतने काल में वह मछली चक्र में घूसती कि, ७०८ चक्र उसकी परिक्रमा होती थी, ऐसा कहा जाता है। सब राजाओं को निमन्त्रण मिला और वहां एकत्र हुए, महाराज पाण्डु को भी निमन्त्रण पत्र आया, उसको लेकर महाराज पाण्डु भी महाराज गंगेशील के समक्ष उपस्थित हुए, निवेदन किया कि मैं महाराज के अनुकूल निमन्त्रण पर जा रहा हूं, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं जाऊं अन्यथा नहीं। महाराज गंगेशील ने कहा वहां जाकर क्या करोगे, वह तो कन्या स्वयंवर है और तुम पत्नीवान् हो, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम जाओ, वह कन्या, तुमको स्वयंवर में वरण कर संस्कार करावेगी। सो मेरी तो इच्छा नहीं कि तुम वहां जाओ।

महाराज पाण्डु ने कहा कि मैं प्रयत्न करूंगा कि वह संस्कार न करवाऊं; परन्तु जो निमन्त्रण आया उस पर पहुंचना हमारा कर्तव्य है। तो ऐसा सुना जाता है कि महाराज पाण्डु वहां पहुंचे, जहां नाना राजा, महाराजा विराजमान थे। उनका बड़ा सत्कार हुआ। तब समय पर सबने मछली को वेधन का प्रयत्न किया परन्तु कोई सफल नहीं हुआ, तो महाराज पाण्डु को कहा गया कि आप वेधन करें, तो महाराज पाण्डु ने कहा कि महाराज मेरा तो संस्कार हो चुका है और यदि मैंने मछली का

वेधन कर दिया तो इस कन्या से संस्कार करना पड़ेगा, तो मेरा यह कर्तव्य नहीं। वेद, शास्त्रों के यह विरुद्ध है और मेरे पिता की आज्ञा है, मैं कोई कार्य वेद, शास्त्रों के विरुद्ध नहीं करूंगा। परन्तु महाराज पाण्डु नम्र थे।

तब ऐसा सुना जाता है कि सब राजाओं ने पाण्डु महाराज से निवेदन किया तो महाराज पाण्डु ने अपने अस्त्र शस्त्रों को लेकर मछली को छेदन कर दिया।

छेदन होने पर सदीन राजा ने बड़ी नम्रता से कहा कि महाराज मेरी कन्या को स्वीकार करें। तो महाराज पाण्डु ने कहा मेरा कर्त्तव्य मछली को छेदन करना था, सो मैंने किया। इस पर सब राजाओं ने पाण्डव महाराज से कहा कि अपने कर्त्तव्य पालन कर स्वयंवर की प्रतीज्ञा को पूर्ण किया है तो आप को कन्या को स्वीकार करना ही पड़ेगा, तब पाण्डु महाराज को स्वीकार करना ही पड़ा।

तब माता, पिता ने कहा कि हमारा कितना सौभाग्य है कि जिसकी कन्या ब्रह्मचारियों के कुल में जाये, और वेद पाठियों के कुल से हमारी कन्या का संयोग हो हमारा अहोभाग्य है।

तब पाण्डु महाराज ने महान् सत्कार पूर्वक उस कन्या को ग्रहण किया। परन्तु मन में सोच रहे थे कि मैं अपनी पत्नी को, पिता को क्या कहूँगा, पत्नी जब पूछेगी कि आपने द्वितीय संस्कार कर लिया है तो क्या उत्तर दूंगा। इस प्रकार सोचते हुए वह कोडिल ब्रह्मचारी गंगेशील के समक्ष जा पहुँचे, और पूछने पर स्वयंवर का विवरण कहा और कहा कि अब मैं क्या करूं। तो उन गंगेशील महाराज ने कहा कि यह शास्त्रों के विरुद्ध है पर तुम ऐसा करो कि अपनी पत्नी की तथा सब की अनुमति लो। यदि तुम्हारी धर्मपत्नी आज्ञा दे तो अवश्य

अपने गृह में इस कन्या को प्रविष्ट करो, उसका गृह पृथक् होना चाहिए यह राष्ट्र का निमय है, पर यदि तुम्हारी धर्मपत्नी चाहे तो गृह में प्रवेश करो और आनन्द लो। उस समय महाराज, महारानी के समक्ष पहुंचे जो बहुत बुद्धिसत्ता थी, उसने उनको स्थान दिया और पूछा कि भगवन् आपका हृदय क्यों दुःखित है, तो उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारी अनुमति लेनेके लिये उपस्थित हुआ हूँ। और संस्कार का सब विवरण कहा तो महारानी कुन्ती ने कहाकि आप इतना संकोच क्योंकर रहे हैं, निःसंकोच होइये। यह कहा कि निर्द्वन्द्र होकर उस कन्या को ले आइये। यह तो हमारा अहोभाग्य है कि हम दोनों, एक माता की पुत्री समान रहेंगी। मानो उस माता ने आदेश दिया कि मेरे तीन पुत्र हैं, औरव्यास महर्षि की आज्ञानुसार ब्रह्मचारी का व्रत धारण किया, और उस गृह में आनन्द पूर्वक प्रवेश और उस कन्या को आदेश दिया कि वेद शास्त्रों के अनुकूल पुत्र उत्पन्न करना, जो सबको सुख पहुंचाने वाले हों।

कुछ काल पश्चात् उसके गर्भ स्थापन हुआ और नकुल की उत्पत्ति हुई। और कुछ समय पश्चात् महाराज पाण्डव मन्त्रियों सहित भ्रमण करते हुए व्यास मुनि के तथा महाराज महर्षि उदकेतु मुनि के समक्ष जा पहुंचे उस समय वह स्वाध्याय कर रहे थे। जब विनाश काल आता है तो बुद्धि का भ्रंश हो जाता है 'विनाश काले विपरीत बुद्धि'।

ऐसा कहा जाता है कि उस समय उन्होंने अपने शस्त्र, अस्त्रों का प्रयोग किया तो वह शस्त्र उस ऋषि के अन्दर प्रविष्ट हुआ और हृदय स्थल में जा पहुंचा। तो उस समय ऋषियों ने अपने वाक्य में कहा 'अरे पापी राजा तेरा विनाश हो! उस समय ऋषियों ने अपने वाक्य में कहा कि अपनी दृष्टि से देख

किसी समय ऐसा आयेगा, कि तुमने हिरनी को इस प्रकार नष्ट किया है तुम्हारी अपनी पत्नी तुम्हारी मृत्यु का कारण बन जायेगी। मुनिवरो ! उस समय महानन्द ने प्रश्न किया महाराज आप तो कहते थे कि किसी को शाप नहीं लगता और शाप का उच्चारण कर रहे हैं ?

तो महानन्द जी आप भी कैसे मूर्खों सदृश प्रश्न करते हैं और तुम भी जानते होगे कि योगी उसको शाप देता है .... एक आयुर्वेद नाम की विद्या है जिससे मस्तिष्क को देख योगी जान लेता है इस काल में उसकी मृत्यु होगी। जो योगी सत्य का पालन करता है उसका वाक्य सत्य हुआ करता है। योगी उसको शाप देता है जो कोई ज्ञानी होकर भी दूसरों को दुखित करता है, जानता हुआ भी दूसरों को कष्ट दिया करता है और जो अज्ञानंतावश, अज्ञानी होने के कारण किसी को कष्ट देता है, उसको शाप देता है, तो उस शाप देने वाले की महानता नष्ट हो जाती है, उसकी योगिकता समाप्त हो जाती है।

और जैसे तुम जानते हो, और तुम योगी होकर भी, यदि हमको नाना प्रकार से कष्ट देने लगो, तो हम जो वाक्य (शाप) कहेंगे वह सत्य होगा, उससे किसी प्रकार बाधा न होगी, इसका कारण तुम ज्ञानी हो। और यदि तुम अज्ञानी होकर अज्ञानता-वश हमें दुःखित करो तब हमारा वाक्य (शाप), वास्तव में हमारी अज्ञता का प्रमाण होता, हमारी सब तपस्या का फल समाप्त हो जाता। ऐसा इसका समाधान है। महाराज पाण्डव जानते हुए भी, योगी होकर, विनोद क्रिया से, किसी को अस्त्रों से समाप्त करते हैं तो वह वास्तव में पापी हैं, और उनको उसी प्रकार का दण्ड मिला—परमात्मा के नियमानुसार दण्ड मिला।

अब आगे देखिए, जब महाराज पाण्डु को यह वाक्य का

पता लगा तो वह सोचने लगे, कि मैं पत्नी के द्वार जाऊंगा ही नहीं क्योंकि मेरी मृत्यु हो जायगी, मैंने सर्वसंसार का ऐश्वर्य, सुख प्राप्त कर लिया है; पत्नी के समक्ष न जाने का नियम बना लिया। तो कुछ काल पश्चात् महारानी कुन्ती जो बुद्धिमत्ती थी, यह सब जान गयी किन्तु महाराज पाण्डु काल की गति से उस के समक्ष जा पहुँचे, और उसको गर्भ स्थापन हुआ और महाराज पाण्डु मृत्यु को प्राप्त हुए। कुछ काल पश्चात् उनका पाँचवा पुत्र रानी माद्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ, जिसे सहदेव कहते हैं। परन्तु गुरु जी हमने तो ऐसा सुना है कि ऋषियों ने जो शाप दिया था वह तो पहले ही दिया था ? और गुरु जी जो आप कहें केवल वही सत्य और जो हमने कहा वह नहीं ?

तो महानन्द जी यह तो कोई विरोध का विषय नहीं, इसका निर्णय करो। अजी हमने तो ऐसा सुना है कि पाण्डु को पहले ही शाप था और पाण्डु रोग था। और दुर्वासा मुनि के मन्त्रों के बल से उनके पुत्र उत्पन्न हुए।

हाँ यह भी कोई विरोध की बात नहीं। पुनः हास्य ·· ···· यदि तुम मूर्ख समाज में होते तो बड़ा आनन्द आता। तुम्हारे वाक्य तो महाबच्चों के सदृश हैं। हास्य···· ·· कैसे २ वाक्य उच्चारण कर रहे हो। वेद के अनुकूल भी नहीं चलते, अपने विषय को भी वेद से विपरीत ले जाते हो। और यथार्थ तो यह है कि हमने जो सत्य था कह दिया है। अब तुम्हारी इच्छा हो तो उसको मान लो। हमें कोई आपत्ति नहीं, जैसा हमने सुना और देखा वह तुम्हारे सामने है, जिसको चाहे, वैसा मानो, इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं।

परन्तु यह अवश्य है कि यदि तुम ऐसे अज्ञानता के वाक्य मानते रहोगे, तो समाज और अज्ञानता में डूब जायेगा।

अच्छा मुनिवरो ! अभी हमारा आदेश चल रहा था कि महानन्द जी की बातों से विनोद पा गये, देखिये हमने अभी द्वापर और त्रेता का समय और उस काल की महानता का वर्णन किया है और हमें उससे ऐसा प्रतीत होता है कि उन महान् माताओं के समान आज भी उसी प्रकार की उच्च देवियाँ उत्पन्न होती रहें तो राष्ट्र का शीघ्र ही कल्याण हो जाये, और यह संसार महानता पर पहुंचे जाये।

आज का हमारा आदेश समाप्त हुआ, कल समय मिलेगा तो दार्शनिक समाज के सम्मुख कुछ दार्शनिक विषय की व्याख्या करेंगे। और समय मिला तो महानन्द जी की भी वार्ता होगी। अच्छा, हास्य ̎ , तो हमारा आज का आदेश समाप्त हो गया है—कल का आदेश इसके आगे उच्चारण करेंगे। अब वेदों का पाठ होगा और फिर इसके पश्चात् यह वार्ता समाप्त हो जायेगी।

❀ ओ३म् ❀

ब्रह्मचारी जी की व्याख्या-प्रक्रिया

सांख्य योग द्वारा विश्लेषण

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी वर्तमान जीवन में शिक्षा न मिलने पर भी वैदिक सिद्धान्तों के अपूर्व वक्ता हैं। अनुपलब्ध शाखाओं का पाठ पूर्वजन्म के संस्कारों के आधार पर सम्प्रज्ञात समाधि अवस्था में करते हैं!

वे व्याख्यान के आरम्भ में सहस्रों जनों की भीड़ में आस पास के नागरिक कोलाहल की विद्यमानता में धारणा अवस्था में पहुँचने के लिए 'शव आसन' में लेट जाते हैं। बाह्य बाधाओं को रोकने के लिए मुख ढक लेते हैं। यह आसन पातञ्जल योग की "स्थिर-सुखम् आसनम्",-२।४६ के आधार पर लगाते हैं। वाचस्पति टीका में इसका अर्थ किया गया है,—"निश्चलं स्थिरं यत्सुखं सुखावहं तदासनम्" एकाग्रता सम्पादन करने वाले का जिस आसन में स्थिर सुख हो, बैठने वाले को जिसमें सुख-प्रतीति हो वह आसन है।

गीता के छठे अध्याय श्लोक ११ में भी "स्थिरमासनमात्मनः, नात्युच्चितं नाति नीचं, चैलाजिनकुशोत्तरम्।", आसन ऊंचा नीचा न हो। हिलने डुलने वाला न हो। वस्त्र, उस पर चर्म, उस पर कुशा बिछाया हो। ऐसा कहा है।

यहां भी आसन की स्थिरता कही गई है। शरीर की स्थिरता से अभिप्राय नहीं। इसीलिए आगे १२ में कहा है।

"तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।" आसन में बैठकर मन को एकाग्र करे। चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को रोके!

इस प्रकार ब्रह्मचारी जी सीधी सरल शैय्या या तखत पर शवासन में १० मिनट तक रह कर धारणा को परिपक्व कर लेते हैं। जैसा कि—

,'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।", योगदर्शन ३। १। चित्त का किसी देश में बाँधना धारणा है। इस सूत्र पर श्री व्यास जी महाराज लिखते हैं।

"नाभिचक्रे, हृदय पुण्डरीके, मूर्धनि .....इत्येवमादिषु देशेषु, बाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्धः इति धारणा।

नाभि चक्र में, हृदय कमल में मूर्धा (सिर) आदि स्थानों में या बाह्य विषय में चित्त की वृत्तियों को बांध देना धारणा है।

ब्रह्मचारी जी मूर्धा में चित्तवृत्तियों को लगभग १० मिनट में बांध लेते हैं (२) तब उनका दृढ़ मानस संकल्प ठीक समय पर हाथों से मुख पर से चादर हटा देता है।

योग मार्ग के पथिकों में यह अभ्यास सर्व साधारण है, कि संकल्प द्वारा समय का अवधारण समाधि काल में कर लिया जाता है। महर्षि दयानन्द जी भी गंगोत्री से ऊपर हिमालय में शेर वाले योगी बाबा के पास रहते हुए बिना किसी घड़ी या बाह्य व्यक्ति के संकेत के सप्ताह की दो सप्ताह तक की समाधि लगा कर उठ जाते थे। वर्तमान युग के महायोगी-ब्रह्मचारी व्यास जी महाराज भी अमृतसर में ही १५-१५ दिन की शून्य

समाधि से मनः संकल्प द्वारा उठते रहे हैं। अमृतसर के आर्य जन आज भी इसकी साक्षी दे सकते हैं।

धारणा के परिपक्व होने के उपरान्त ध्यान आरम्भ होता है—

"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।" योग ३-२।

धारणा के परिक्व हो जाने पर ज्ञान का एक सा प्रवाह बना रहना ध्यान है।

महर्षि व्यास जी महाराज ने लिखा है।

"तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेण अपरामृष्टो ध्यानम्।"

उस देश में धारणा जहां लगाई हो वहां ध्यान के योग्य वस्तु की एकरस से प्रतीति ध्यान है। जब कि उसमें किसी अन्य ज्ञान की मिलावट न हो।

बिल्कुल यही दशा ब्रह्मचारी जी की होती है। वह लगभग १३ मिनट तक संहिता मन्त्रों का पाठ करते हैं बीच में अन्य कोई विषय नहीं आता। इस दशा में उनके दोनों हाथों का सम्पुट स्वतः हो जाता है। और सिर दायें बायें वेग से हिलता है। 'मुनिवरो' सम्बोधन से व्याख्यान आरम्भ हो जाता है।

तदेवार्थमात्र-निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।" वही ध्यान समाधि बन जाता है जब वस्तु मात्र प्रतीत हो और अपने रूप का भान न हो।

यह अवस्था हमारे विचार में सम्प्रज्ञात-समाधि की है। और वह भी सविचार समाधि की। क्योंकि सविचार पर ४४ वें सूत्र में लिखा है—

"सविचारा—सूक्ष्मविषया व्याख्याता "

सूक्ष्म विषय वाली सविचार समाधि होती है।

"सूक्ष्म-विषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम्।" १।४५।

सूक्ष्म विषयता अलिंग मूल प्रकृति पर्यन्त है। प्रधान प्रकृति ही निरतिशय सूक्ष्म है।

जाग्रत् अवस्था

यह ब्रह्मचारी जी की जाग्रदवस्था ही है या नहीं। क्योंकि धारणा ध्यान और समाधि जाग्रत् अवस्था की ही विशेष स्थितियां हैं।

पूर्व जन्मों की स्मृति ?

और जो बोलते हैं, स्मृति के कारण बोलते हैं। और यह सब स्मृति संस्कारों के उद्बुद्ध होने पर होती है। योग में कहा है—

"अनुभूतविषयासम्प्रमोष- स्मृतिः।" १॥ ११।

अनुभव किये हुए का विषय सामने आ जाना स्मृति है। स्वप्न अवस्था में जो स्मृति है वह भावित-स्मर्तव्या होती है। अर्थात् कल्पित स्मर्तव्या होती है। उस स्मृति में कल्पना मिली होती है। जाग्रत में अभावित-स्मर्तव्या होती है अर्थात् पारमार्थिकी स्मृति होती, सही होती है, सच्ची होती है।

साधारण अवस्था में स्मृति क्यों नहीं ?

साधारण अवस्था में स्मृति बहुत निर्बल होती है। खाने-पीने की बात मास की तो क्या चार दिन की भी सब बातें स्मरण नहीं रहतीं। पर धारणा ध्यान समाधि के द्वारा—

"संस्कार-साक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ॥ ३। १८ ॥ योगी

संस्कारों का साक्षात् करने से पूर्व जन्मों का वृत्त जान लेता है। "संस्कारों के उद्बुद्ध होने पर सब बीती बात जान लेता है। इस प्रकार पहले जन्म में अनुभव की हुई जाति आदि को प्रत्यक्ष देखता है।" (भोजवृत्ति)

इस पर व्यास ने लिखा है-भगवतो जैगीषव्यस्य......दशसु महासर्गेषु जन्म—परिणाम—क्रममनुपश्यतो विवेकजं ज्ञानं प्रादुरभूत्।"

भगवान् जैगीषव्य को संस्कारों के साक्षात् करने से दश महासर्गों में हुए जन्म परिणाम क्रम को देखते हुए विवेक हो गया।

इस प्रकार ब्रह्मचारी जी को समाधि होने पर पूर्व जन्मों के संस्कार और अद्भुत ज्ञान की स्मृति हो जाती है। अपरिग्रह की सिद्धि पर भी पतञ्जलि महाराज ने लिखा है--

"अपरिग्रह स्थैर्ये जन्मकथन्ता--सम्बोधः।" २। ३९
"योगी जब अपरिग्रह में स्थिरता लाभ कर लेता है तो पहले जन्म में मैं क्या था? क्या क्या काम किये? इन बातों के जानने की इच्छा होने पर सब कुछ भली प्रकार जान लेता है।" (भोजवृत्ति)

महर्षि व्यास महाराज ने तो लिखा है--"मैं कौन था। किस प्रकार रहा। यह वर्तमान शरीर क्या है। यह कैसे? आगे जन्म में क्या होंगे। किस प्रकार बीतेगी। अपने विषय में सब जान लेता है। ये सिद्धियां यमों के सिद्ध होने पर होती हैं। यदि ब्रह्मचारी जी पूर्व जन्मों की बातें या ज्ञान की चर्चा स्मृति-संस्कार वश करते हैं तो आश्चर्य क्यों? इसका प्रत्याख्यान क्यों?

शाप सही है

यह ज्ञान ब्रह्मचारी जी को साधारण दशा में क्यों नहीं? विनय नगर के एक व्याख्यान में इसका कारण ब्रह्मचारी जी ने ब्रह्मा जी का शाप बताया है। क्योंकि इन्होंने अपने शृंगी ऋषि जीवन काल में ब्रह्मा के पुत्र कुत्री ऋषि को स्वयं गुरु होते हुए अपना अपमान होने पर शाप दे दिया था। और ब्रह्मा जी ने मुझे (शृंगी ऋषि को शाप दे दिया था) उस शाप के कारण इस पिछड़े अपठित कुल में अपठित दशा में जन्म हुआ।

क्या यह शाप की घटना सत्य है

हां सत्य हो सकती है। क्योंकि ऋषि दयानन्द जी महाराज ने योग दर्शन को प्रामाणिक माना है। योग में आया है—

"सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया-फलाश्रयत्वम्।" २। ३६

जब सत्य सिद्ध हो जाता है तो योगी की वाणी अमोघ हो जाती है। "अमोघस्य वाग् भवति—धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः। स्वर्गं प्राप्नुहि इति स्वर्गं प्राप्नोति।"

योगी जब किसी को कहता है--धार्मिक हो जाओ तो वह धार्मिक बन जाता है। यदि किसी को कहता है स्वर्ग को प्राप्त कर तो वह स्वर्ग प्राप्त कर लेता है। जैसे याग आदि से स्वर्ग मिलता है। पर योगी तो बिना क्रिया के भी स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है। और उसके वचन से दूसरे को भी बिना क्रिया किये उसकी वाणी से ही, कह देने से ही, फल मिल जाता है।

इतना स्पष्ट उल्लेख होने पर ऐसी दशा में शाप या आशी-

वाद के सत्य होने की बात को मानने में हिचकिचाहट क्यों ?

ब्रह्मचारी जी ने बताया, उन्होंने अपने शृंगी जीवन काल में ८४ वर्ष तक सत्य का अभ्यास किया। सत्य सिद्ध हो जाने पर यह सब घटनाएं घट गई हों तो आश्चर्य क्या ? और ब्रह्मचारी जी ने अपने व्याख्यान में इस शाप की बात को भी उठाया है। और शाप भी कर्म बन्धनानुसार ही होता है। अन्यथा प्रभु की व्यवस्था के विरुद्ध सत्याभ्यासी नहीं बोल सकता ऐसा कहा है। सत्य सिद्ध परम योगीजन परमात्मा के अटल नियमों का उद्घाटन करते हैं। हम अल्पज्ञ उसको शाप के रूप में मान लेते हैं !"

क्या सिर हिलाना पाखण्ड है

"दूध का जला छाछ फूंक फूंक कर पीता है।" इसमें हानि भी नहीं। पर छाछ श्वेतिमा देखकर सर्वदा उष्ण दूध का ही निश्चय और आग्रह नहीं करते रहना चाहिये। तथ्य को समझने का यत्न करेंगे तभी तथ्य समझ में आयेगा। देखिये— हम यह पहले लिख चुके हैं, यह जाग्रत् अवस्था में समाधि अवस्था है। समाधि अवस्था में जब योगी होते हैं तो अलिंग प्रकृति पर्यन्त विचार मग्न होते हैं। महर्षि दयानन्द जी भी सम्प्रज्ञात समाधि में वेद मन्त्रों के अर्थों का विचार करते थे। अन्य योगी भी इसी प्रकार सम्प्रज्ञात समाधि में चित्त वृत्ति निरोध का ही अभ्यास करते हैं। उस अवस्था में बोलते किसी को नहीं देखा। ब्रह्मचारी जी उस अवस्था में पहुँच कर बोलते हैं अभ्यास नहीं करते हैं। बोलने पर वाग् इन्द्रिय और इन्द्रिय दो इन्द्रियां क्रिया रत हो जाती हैं। वाणी के उच्चा-

रण के साथ ही प्राण भी गति करने लगते हैं। इस स्थिति की विशेषता के कारण प्राणाघात से सिर हिलता है। यह ढोंग नहीं। ढोंग मार पड़ने पर बन्द हो जाता है। पर ब्रह्मचारी जी के साथ ऐसी बात नहीं। "हरिद्वार में किसी अखाड़े में ठहरे थे। रात को अचानक सीधा पट लेट जाने पर बोलना आरम्भ हो गया। व्याख्यान में जहां ठहरे थे उन्हीं के खण्डन क विषय आ गया। उन लोगों ने ब्रह्मचारी जी को पीटा। पर वे उसी प्रकार बोलते रहे। बोलना बन्द नहीं हुआ। जब स्वतः करवट ली, बोलना बन्द हुआ।"

यदि ढोंग होता तो पिटाई से व्याख्यान बन्द हो जाता। एक स्थल पर ब्रह्मचारी जी शवासन में इसी प्रकार बोल रहे थे। वर्षा आरम्भ हो गई। श्रोता चले गये। ब्रह्मचारी जी का बोलना जारी रहा। वर्षा भी बन्द नहीं हुई। जब यथा समय करवट ली तब बोलना बन्द हुआ। क्या यह ढोंग में सम्भव है? यह भी एक प्रश्न है, ब्रह्मचारी जी ढोंग क्यों करते हैं। वे किसी से पैसा नहीं मांगते। इनको तो यह क्रिया स्वतः होती है, जब भी सीधे लेट जाते हैं। और १०, १५ मिनट बाद प्रवचन प्रारम्भ हो जाता है।

लेट कर ही क्यों?

योग के आठ प्रकारों में से "विशोका वा ज्योतिष्मती।" (१। ३६) प्रकाश ज्योतिः, दिव्य नेत्र उत्पन्न करने की विधि है। व्यास महाराज ने लिखा है-"बुद्धिसत्त्वं हि भास्वरमाकाश" बुद्धि सत्व प्रकाशमय चमकीली है। सूर्य चन्द्र या मणि के चमक के समान भासता है। इस प्रकाश के द्वारा ही आगे योग में प्रगति होती है।

इस प्रकाश को शक्ति पात द्वारा भी प्राप्त कराने की प्रक्रिया है। उसमें भी जब भी साधक बैठ जाता है यौगिक प्रक्रिया स्वतः प्रारम्भ हो जाती है। कनखल के सुप्रसिद्ध वैद्य विष्णुदत्त जी; तथा महाविद्यालय ज्वालापुर के व्याकरणाचार्य श्री छेदीलाल जी तथा पं० दिलीपदत्त जी उपाध्याय इसी प्रक्रिया के साधक थे। आज भी इस प्रक्रिया के अनेक साधक हैं। वे जब अपने आसन पर बैठते हैं, तभी योग प्रक्रिया स्वतः हो जाती है। इसी प्रकार ब्रह्मचारी जी भी सीधे लेटते हैं। तभी यह प्रक्रिया आरम्भ होती है इसमें असम्भवता कुछ भी नहीं।

बिना योगाभ्यास यह कैसे ?

योगी जब सिद्धियों को पार करता हुआ आगे बढ़ता जाता है और उनमें नहीं फंसता है तो –

परमाणु परम महत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ १ । ४० ॥

परमाणु से लेकर महत्तत्त्व पर्यन्त सब योगी के वश में हो जाता है। और उस समय योगी महर्षि व्यास के शब्दों में—

तद्वशीकारात परिपूर्ण योगिनश्चित्तं नाभ्यासकृतं परिकर्मापेक्षते ॥

योगी जब सब पर वशीकरण प्राप्त कर लेता है तो योगी का चित्त फिर अभ्यास कृत कर्म कलाप, उपाय की अपेक्षा नहीं करता।"

इस प्रकार से स्पष्ट है इस प्रकार की स्थिति के पीछे अभ्यास की आवश्यकता छूट जाती है।

इतना ज्ञान कहां से ?

योगज ज्ञान की दृष्टि से तो यह ज्ञान कुछ भी नहीं है। पर जो कुछ ब्रह्मचारी जी बोलते हैं, वह अपूर्व पाण्डित्य से पूर्ण होता है। जो लोग इसे सिखाया हुआ कहते या मानते हैं उन्हें उस सिखाने वाले का तो सब प्रकार समादर करना ही चाहिये। व्याख्यानों में शास्त्रीय उलझनें बड़े अनोखे और अश्रुत पूर्व ढंग से सुलझाई जाती हैं। इस प्रकार की कुछ व्याख्यायें श्री भीमसेन जी आदि ऋषि के शिष्यों आदि के लेखों में देखी गई हैं; पर जो व्याख्या श्री ब्रह्मचारी जी करते हैं वह वहां नहीं है। इनका ऊहापोह सर्वथा नया होता है। व्याख्यानों में एक नया ओज होता है। भाषा साधारण होते हुए भी भाव पूर्ण होती है। अपूर्व आध्यात्मिक पुट लिए होती है।

यह सब बिना यौगिक शक्ति के नहीं हो सकता। यदि यह इनकी शाप दशा न होती, या यह दशा (स्थिति) शापावस्था समाप्त हो जाए तो निस्सन्देह यह अश्रुतपूर्व ज्ञान राशि का उद्गिरण कर सकेंगे।

सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्व-ज्ञातृत्वं च ॥यो० ३ । ४६ ॥

सत्त्व और पुरुष की भिन्नता को प्रत्यक्ष जान लेने पर योगी सब भावों का अधिष्ठाता हो जाता है। सर्वज्ञ हो जाता है। सब अवस्था वाले गुणों का एक साथ बिना किसी क्रम से विवेकज ज्ञान होता है। "विशोका" नाम की सिद्धि को प्राप्त कर लेने पर योगी क्लेश के बन्धनो से रहित हो सर्वज्ञ होकर सब का अधिष्ठाता होकर विचरण करता है।

तारकं सर्व-विषयं सर्वथा विषयमक्रमं
चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ योग० ३ । ४५ ।

योगी सब जान लेता है। अतीत, अनागत और तात्कालिक का बिना किसी क्रम के जान लेता है। (व्यास भाष्य) इस प्रकार की अद्भुत ज्ञान योगी को होता है।

एक शरीर में दो आत्माएं कैसे ?

ब्रह्मचारी जी जब व्याख्यान बोलते हुए होते हैं तब बीच में महानन्द जी के मुख से प्रश्न करते हैं। गुरु जी कह कर सम्बोधन करते हैं। इनके प्रश्न और अवसर मिलने पर जब इनका व्याख्यान होता है तो दोनों ही अद्भुत तथा प्रभावशाली होते हैं। इनके प्रश्न ही बहुत सी जनता की शंकाओं का समाधान करते हैं। इस पर महर्षि का यह सूत्र समझने और मनन करने के योग्य है:--

बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचार-संवेदनाच्च
चित्तस्य पर शरीरावेशः ॥ योग० ३ । ३८ ॥

कर्म बन्धन का क्षय हो जाने पर और अपने चित्त के संचार अर्थात् चित्त के शरीर से बाहर जाने और पुनः शरीर में प्रवेश करने के प्रकार को जान लेने पर योगी चित्त को अपने शरीर से निकाल कर दूसरे शरीर में डाल देता है। उसी प्रकार इन्द्रियाँ भी चित्त के पीछे-पीछे दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाती है।

(व्यास भाष्य)

इस पर वाचस्पति ने लिखा है :--

चित्त का अनुसरण करने वाली इन्द्रियां भी दूसरे के शरीर में यथास्थान प्रवेश कर जाती हैं।

इस पर भोज वृत्ति में लिखा है :—

परकीय शरीरं मृतं जीवच्छरीरं वा चित्त-सञ्चारद्वारेण प्रविशति ॥

दूसरों के मृत या जीवित शरीर में चित्त के संचार द्वारा प्रवेश करता है।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती भी इन योग की सिद्धियों को स्वीकार करते हैं। पर शरीर प्रवेश पर उनका १७-७१ का यजुर्वेद भाष्य देखने के योग्य है—भावार्थ में लिखते हैं—"जो योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आदि योग के साधनों से योग (धारणा, ध्यान, समाधि रूप संयम) के बल को प्राप्त हो और अनेक प्राणियों के शरीर में प्रवेश करके अनेक शिर नेत्र आदि अंगों से देखने आदि कार्यों को कर सकता है। अनेक पदार्थों वा धनों का स्वामी हो सकता है। उसका हम लोगों को अवश्य सेवन करना चाहिए।"

इससे स्पष्ट है योगी दूसरे के मरे या जीते शरीर में प्रवेश कर सकता है। महानन्द जी भी योगी हैं (शृङ्गी ऋषि) ब्रह्मचारी जी को गुरु कह कर पुकारते हैं।

ये भूत-प्रेत क्यों नहीं ?

(प्रश्न)—यदि जीवित शरीर में दूसरी आत्मा प्रवेश कर सकती है ? तो भूत-प्रेत के मानने से कैसे इन्कार कर सकोगे ?

(उत्तर)—यदि भूत-प्रेत हैं ऐसा मान लिया जाये तो बड़ी भारी हानि होगी। अनर्थ होगा ?

बात को सही रूप में न समझने पर इस प्रकार की शंका स्वाभाविक है। पर योगी के पर-शरीर प्रवेश और

भूत संचार की प्रक्रिया में महान् भेद है। योगी पर-शरीर में प्रवेश उसी समय करता है जब "बन्धकारण शैथिल्य और प्रचार संवेदन" योगी को हो जाता है। अर्थात् जब योगी कर्म बन्धन को ढीला कर सकता है। समाधि के प्रभाव से कर्म बन्धन को ढीला कर लेने पर और समाधि द्वारा चित्तवहा नाड़ी को जान लेता है, तो उसके द्वारा चित्त को पर शरीर में योगी ले जाता है।

इसका स्पष्ट अभिप्राय यह निकला कि अहिंसा का पारंगत योगी ही दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकता है। जिनको भूत-प्रेत कहा जाता है वे तो साधारण राग-द्वेष से परिपूर्ण आत्माएं होती हैं। उन्हें योग का संस्पर्श भी नहीं होता। वे दूसरे के शरीर में क्या प्रवेश करेंगी। अतः भूत-प्रेत की धारणा नितान्त अशुद्ध असंगत है। ये तो सुश्रुत में कहे कृमिजन्य तथा मानसिक रोग हैं। अतः पर-शरीर प्रवेश की यौगिक प्रक्रिया को भूत प्रेत से मिलान करना अपनी योग से अनभिज्ञता प्रकट करना है।

यह महानन्द कौन है ?

महानन्द जी एक योगी हैं। जो सूक्ष्म शरीर में हैं। स्थूल शरीर से उनका इस समय संबंध नहीं है। क्यों नहीं है ? यह तो कोई प्रभु की सृष्टि के सम्पूर्ण रहस्य को समझने वाला योगी ही बता सकता है। पर कुछ बातें सुस्पष्ट हैं जिनसे इस विषय में पर्याप्त प्रकाश मिल सकता है।

सूक्ष्म शरीर और उसकी गतिमति—

सूक्ष्म शरीर के विषय में सांख्यदर्शन ने—

सप्तदशैकं लिङ्गम् ॥ सांख्य ३।९॥

१७ और एक अर्थात् १८ तत्त्वों का लिङ्ग शरीर या सूक्ष्म शरीर होता है। महर्षि दयानन्दजी ने भी सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में बताया है—"१७ तत्त्वों का समुदाय सूक्ष्म शरीर कहाता है। यह सूक्ष्म शरीर जन्ममरणादि में भी जीव के साथ रहता है।" महर्षि ने अहंकार को बुद्धि में ही परिगणित कर १७ तत्व माने हैं। अस्तु यह सूक्ष्म शरीर भी स्थूल के आधार से ही कार्य करता है।

तद्बीजात् संसृतिः ॥ सांख्य० । ३ ॥

स्थूल शरीर के बीज सूक्ष्म शरीर के कारण ही संसरण होता है। इसी से जीव एक देह से दूसरे शरीर में जाता है। मनु ने कहा है :—

योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥६।६३॥

हजारों करोड़ योनियों में इसी शरीर के कारण गमन होता है।

आविवेकाच्च प्रवर्तनमविशेषाणाम् ॥ सांख्य० ३ । ४ ॥

जब तक विवेक नहीं होता अर्थात् मुक्ति नहीं होती तब तक सूक्ष्म शरीर अपना कार्य करता है और मुक्ति से लौटने पर भी प्रत्येक आत्मा को सूक्ष्म शरीर मिलता है। अर्थात् यह शरीर तो लाखों अरबों वर्ष का है। जन्म जन्मान्तरों में नाना योनियों में स्थूल शरीर के साथ सम्बन्ध करता है।

उपभोगादितरस्य । सांख्य० ३ । ५ ॥

उपभोग के कारण ही स्थूल शरीर से सम्बन्ध होता है।

पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वं भोगादेकस्य नेतरस्य ॥ ३ । ८ ॥

सर्ग के आरम्भ में सब जन्मों से पहले उत्पत्ति वाले सूक्ष्म शरीर से ही सुख दुःख का भोग होता है। स्थूल शरीर को नहीं होता क्योंकि मृत शरीर का कोई भोग नहीं।

"न स्वातंत्र्यात् तदृते छायावच्चित्रवच्च। सांख्य ३।१२

सूक्ष्म शरीर भी स्थूल शरीर के बिना कुछ कर्म नहीं कर सकता। जैसे छाया या चित्त आधार के बिना काम नहीं करते।

इसलिए योगी महानन्द जी का शरीर ब्रह्मचारीजी के शरीर का आश्रय लेकर प्रश्न करता है और उत्तर पाता है। स्थूल इन्द्रिय के गोलक (माइक्रो फोन) के समान हैं। जो भी सूक्ष्म शरीर सम्बन्ध करता है, उसी की विचार धारा को स्थूल शरीर प्रसार करता है।

एक सूक्ष्म शरीर के होते दूसरा सूक्ष्म शरीर कैसे आ सकता है?

सूक्ष्म शरीर का परिमाण अणु होता है। इन विशाल इन्द्रिय गोलकों के साथ अनेक सूक्ष्म शरीर सम्बन्ध कर सकते हैं। सांख्य ३ । १४ में सूक्ष्म शरीर को "अणुपरिमाणम्" लिखा है।

क्या सूक्ष्म शरीर बिना स्थूल शरीर के रह सकता है?

हां, निश्चित रूप से रहता है। देखो महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने स्पष्ट लिखा है।

"जब (जीव) शरीर छोड़ता है तब यमालय अर्थात् आकाशस्थ वायु में रहता है।

नवम समुल्लास—२१६ पृ०

(पूर्व०) मरकर जीव कहां जाता है?

(उत्तर) शरीर छोड़ वायु के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं।
(स० प्र० ग्यारहवां समुल्लास। बड़े अक्षर पृ० ३०८)

इस पर महर्षि दयानन्द जी ने दो मन्त्रों के पद उद्धृत किये हैं।

"यमेन" (१०। १४। ८)

"वायुना" (२०। १४१। २)

पूरे मन्त्रों को पढ़ने से यह बात सुस्पष्ट हो जाती है।

'संगच्छस्व पितृभि ! सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ॥"
(ऋग० १०, १४, ८)

पितृभिः=मन आदि सूक्ष्म शरीर के साथ, (इष्टापूर्तेन) श्रौत और स्मार्त कर्मों के साथ, (वायुना) वायु के साथ (परमे व्योमन्) खुले आकाश में (संगच्छस्व) जा।

"यदिन्द्रेण सरथं याथोऽश्विना,
यद् वा वायुना भवथः समोकसा।
यदादित्येभिः ऋभुभिः सजोषसा,
यद् वा विष्णो विंक्रमणेषु तिष्ठथः ॥"
(अथर्व २०, १४२, ७)

(इन्द्रेण अश्विना सरथं याथः) आत्मा और सूक्ष्म कारण शरीरों के साथ (वायुना याथः) = वायु के साथ जाओ। (समोकसा भवथः) = अन्तरिक्ष में साथ साथ रहो। (यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः) यद्वा सूर्य की किरणों के विहार-स्थल में ठहरो।

इन वाक्यों से स्पष्ट है कि जीव शरीर छोड़ने के बाद

आकाश में रहता है और कर्मानुसार यथा समय अगला जन्म लेता है। वेद में स्पष्ट लिखा है।

"विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः।" अन्तरिक्ष में ठहरो। जब ठहरने की अवधि समाप्त हो जायगी--जन्म मिलेगा। वह अवधि वर्षों की भी हो सकती है क्षणों की भी हो सकती।

क्या वेदों में ३५ सहस्र मन्त्र हैं ?

"नहीं"

"फिर ब्रह्मचारी जी ने ऐसा क्यों कहा ?

ब्रह्मचारी जी ने नहीं—महानन्द जी ने कहा। महानन्द जी शिष्य ही तो हैं अशुद्ध भी कह सकते हैं। पर वास्तव में प्रसंग को समझने की आवश्यकता है।

ता० १२। ३। ६२ के हनुमान रोड के भाषण में महानन्दजी ने कहा है। वेद की विद्यायें कुछ लुप्त हो गई हैं। कुछ संहितायें नहीं मिली हैं। उनका प्रसार अभी तक नहीं हुआ है। इस संसार में कुछ ऐसा तो माना है। परन्तु उन्होंने (महर्षि दयानन्द जी ने) चारों वेदों की संहितायें नियुक्त करदी हैं। परन्तु जो कुछ नहीं मिला उसे कहां से लाते ?

विचारो, उनका तो जितना काम था उतने का प्रसार कर गए। उनका ज्ञान अथाह था। उनके द्वारा समुद्र ही था। जैसा कि गुरुजी के कथनानुसार वह समुद्र है। उनकी विद्या समुद्र थी। क्योंकि ? वे पूर्व के अट्टटी नाम के ऋषि थे। उनकी आत्मा ने जन्म लिया इस संसार का कल्याण करने के लिये।

ता० १३। ५। ६२ को हौज खास में कहा—

अच्छा देखो हमारे चारों वेदों में बहुत मन्त्र है। उन्ही का संहिता (शाखा) रूपों में वर्णन किया गया है।

मालवीय नगर में कहा--

"स्वामी जी ने २० हजार मन्त्र नियुक्त किए हैं। जो ऋषि ने कहा—यथार्थ कहा।

यहां तक तो सब ठीक है। केवल एक वाक्य संदिग्ध है। "वेदों के सारे ३५ सहस्र मन्त्र हैं" या इसी प्रकार का कुछ है। इस एक वाक्य पर सारा तूल खिंच गया है।

वैसे मैंने ब्रह्मचारी जी के लगभग २० व्याख्यान बड़े आनन्द के साथ सुने हैं। सब ही व्याख्यानों में वेद की अपूर्व व्याख्या थी। जिनमें वैदिक व्याख्यानों का बुद्धि संगत, जीवन को ऊँचा उठाने वाला, अश्रुतपूर्व समाधान था। उनमें कोई भी सिद्धान्त-विरुद्ध बात नहीं मिली। न ही सिद्धान्त विरुद्ध राजनीति की हुल्लड़ बाजी या इधर उधर की वृथा जानकारी। व्याख्यानों में बड़ी भारी संख्या जनता की होती है। जितनी वार्षिक उत्सवों में भी नहीं होती। जनता वेद और वेद की ओर बराबर श्रद्धा से खिंची चली आती है।

यह सब होते हुए ३५ हजार मन्त्रों की बात जैसी अटपटी लगती है। वैसी है नहीं।

(१) संस्कार विधि ऐसे मन्त्रों से भरी पड़ी है जो वेद मन्त्र नहीं हैं और ऋषि दयानन्द जी सरस्वती ने उनको मन्त्र लिखा है। उनकी क्या गति है?

२० पृष्ठ पर आश्वलायन और पारस्कर के वाक्यों को ऋषि ने मन्त्र लिखा है। और सबके आरम्भ में ओम् लिखा है।

ओम् अयन्त.........यह भी आश्वलायन का मन्त्र कहा गया है !

ओम् अदिते......आदि गोभिलीय के मन्त्र लिखे गये हैं।

आज्य भागाहुति के भी दो मन्त्र ऐसे ही हैं।

शतपथ का "यदस्य कर्मणो" को भी इसी प्रकार का मन्त्र कहा गया है। सारी संस्कार विधि ऐसे ऋषि कथित मन्त्रों से भरी पड़ी है।

(२) यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में मध्यान्दिन में १७ और काण्व शाखा में १८ मन्त्र हैं। पाठ की दृष्टि से २ मन्त्र अधिक हैं।

"तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।
पूषन्नेकर्ष यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्त्समूह। १५।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि।
योऽसावसौ पुरुषः सोहमस्मि।" ।१६॥ ईशोपनिषत्॥

(३) इसीलिए पं भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर को लिखना पड़ा, ब्राह्मण, उपनिषद् और श्रौत सूत्रों में अनेक ऋचायें हैं जो वर्तमान ऋग्वेद में नहीं मिलतीं। परन्तु उनमें से कुछ उपलब्ध शाखाओं में मिल जाती हैं यथा ऐतरेय ब्राह्मण में प्रतीक पठित अनेक ऋचायें। उनकी स्थिति किस प्रकार से निर्णीत होगी ? यह गम्भीर प्रश्न है ?

इन सबसे ऐसा लगता है कि चारों वेदों के व्याख्यान-भूत शाखाओं का पाठ ३५ हजार मन्त्र का है। इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं।

कौन से वेद का पाठ करते हैं ?

श्री ब्रह्मचारी जी ने स्वयं कहा है कि हमने "आंगिरस

संहिता" का पाठ किया है। प्रपञ्च हृदय में अथर्ववेद की शाखाओं में आंगिरस की गणना की गई है।

जिस शाखा का नाम ही मिलता हो और पाठ न मिलता हो उसका इस प्रकार उच्चारण उपलब्ध होना सौभाग्य की बात है। उस पर परिश्रम और गवेषणा होनी चाहिए न कि खोज से मुख मोड़कर उसका मूर्खता पूर्ण विरोध।

क्या यह मंत्र वेद से मिलते हैं?

जब पाठ ही शाखाओं या शाखा संहिताओं का है तो वेद में उनके मिलने की बात सर्वथा असंगत है।

विनय नगर के व्याख्यान में—

मां धुरिन्द्रं नाम देवता दिवश्चग्मश्चापां च जन्तवः।
अहं हरी वृषणा विव्रता रघू अहं वज्रं शवसे धृष्णवाददे।
(ऋ० १०। ४९। २)

यह मन्त्र मोती बाग के स्वाध्यायशील व्यक्ति ने ढूंढा था।

व्याख्यान में आये तीन मन्त्रों के अर्थ हमने भी लिखकर दिये। आश्चर्य यह है कि तीनों मन्त्रों के सब पद ऋषिभाष्य में उपलब्ध हो गये। और अर्थ बहुत बढ़िया सुसंगत निकला।

महर्षि दयानन्द जी का सिद्धान्त वही था जो शंकराचार्य जी का था?

श्री ब्रह्मचारी जी ने बताया महानन्द जी के मुख से—

श्री शंकराचार्य जी ने आत्मा परमात्मा को पृथक् माना है। इनका महर्षि दयानन्दजी का वही सिद्धान्त था जो श्री शंकराचार्य जी का था।

यह व्याख्यान हमने सुना नहीं। पर इतनी बात हम जानते हैं कि दिल्ली के श्री पं० गंगा प्रसाद जी ने स्वामी जी के

लेखों से अद्वैतवाद सिद्ध किया था। यहां उससे विपरीत श्री शंकराचार्य जी को द्वैतवादी सिद्ध किया है।

ऋषि ने श्री शंकराचार्य जी द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद का बड़ा प्रबल खण्डन किया है। पर श्री शंकराचार्य जी का बड़े सम्मान से उल्लेख किया है और यह भाव व्यक्त किया है कि—

"जो जीव ब्रह्म की एकता, जगत् मिथ्या शंकराचार्य का निज मत था तो यह अच्छा मत नहीं, और जो जैनियों के खण्डन के लिए उस मत का स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है। (सत्यार्थ प्रकाश ११ समुल्लास)

क्या महानन्द जी से स्वीकृत शंकर के अभिमत द्वैतवाद की ध्वनि इससे नहीं निकलती कि शंकराचार्य द्वैतवादी थे। फिर ब्रह्मचारी जी पर आक्षेप कैसा।

अतः प्रत्येक विचारशील वेदज्ञ विद्वान् महानुभावों से हमारी प्रार्थना है कि ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी की इस अलौकिक घटना पर गम्भीरतापूर्वक मनन करें, विचार करें और किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच कर विश्व को वैदिक पुनर्जन्म, परलोक और योग की विभूतियों का दिग्दर्शन करा दें।

आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री

(योग के सिद्धान्तात्मक एवं
क्रियात्मक अन्वेषण में संलग्न)
आचार्य, दयानन्द वेद विद्यालय, नई दिल्ली-१६



❀ ओ३म् ❀

शुभ सम्मतियां

ओम् आरोह तमसो ज्योतिः । ऋग् अ० ८ । १ । ८ ॥

(अन्धकार को त्याग कर प्रकाश पर आरूढ़ हो ।)

इस अकिंचन सेवक को सर्व प्रथम ता० ३ जनवरी सन् १९६२ ई० को प्रातः समय में आर्य हायर सैकण्डरी स्कूल, लोधी कालोनी, नई दिल्ली में आर्य समाज लक्ष्मी बाई नगर, नई दिल्ली के श्री मन्त्री जी ने, श्री ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी की प्रथम भाषण-माला में श्री ब्रह्मचारी जी महाराज के भाषण सुनने के लिए साग्रह आमन्त्रित किया था। कार्यवश, मैं उस दिन भाषण में उपस्थित न हो सका। परन्तु मुझसे ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ श्रीमान् पं० बृहद्बल जी संयमी शास्त्री, प्रभाकर, साहित्य-रत्न, एम० ए० भूतपूर्व प्रिंसिपल आर्य विद्यापीठ, करौल बाग, दिल्ली, श्री ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के भाषण सुनने के लिए गये। वे व्याख्यान से तीन घण्टे पूर्व ही श्री ब्रह्मचारी जी के पास पहुँच गये थे। उन्होंने उनसे वार्तालाप किया, उनके साथ भोजन किया। उस रात को उनका भाषण भी आद्योपान्त सुना। वे जब प्रातःकाल विद्यालय के पुस्तकालय में मिले तो उन्होंने मेरे से कहा कि "आत्मा अमर है, पुनर्जन्म होता है।

यह सत्य सिद्ध हो गया। पूर्व जन्मों का सञ्चित महान् ज्ञान साथ लेकर किसी महान् आत्मा ने जन्म धारण किया है। आप भी अवश्य उनका प्रवचन सुनें।" इत्यादि।

५ वें भाषण में जब पहुँचा तब श्री ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी व्याख्यान के लिए स्वप्नावस्था में (ध्यानावस्था में) पहुंच चुके थे। जनता भी इतनी थी कि मुझको आर्य समाज सरोजनी नगर (विनयनगर) नई दिल्ली की भूमि पर खड़े होने तक के लिए स्थान न मिल सका। अतः सड़क पर खड़े होकर भाषण सुना। भाषण प्राचीन देवनागरी भाषा (हिन्दी भाषा) में था, भाषण का विषय महत्वपूर्ण, गम्भीर, प्रभावशाली, रोचक एवं सामयिक था। जीवन को चारित्रिक, एवं आध्यात्मिक प्रेरणा देने वाला था। विषय की गम्भीरता और उपयोगिता ने मुझको अत्यधिक प्रभावित किया।

क्या यह पाखण्ड है ?

श्री ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के मन्त्र पाठ के समय एवं व्याख्यान के समय शिर-संचालन ने मेरे मन में किसी प्रकार की शंका, एवं भय उत्पन्न नहीं किया, क्योंकि व्याख्यान में विषय-वस्तु की गम्भीरता से मुझको यह पूर्ण विश्वास हो गया था कि यह शिर-सञ्चालन श्री ब्रह्मचारी जी के वश में नहीं है। इसलिए यह ढोंग या पाखण्ड भी नहीं है।

जो लोग इस शिर-सञ्चालन के कारण श्री ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के इन प्रवचन-आयोजनों को पाखण्ड, ढोंग या

Fraud (फ्राड) के नाम से पुकारते हैं, सम्भवतः उन्होंने कभी पाखण्ड शब्द की व्युत्पत्ति पर गम्भीरता से विचार ही नहीं किया।

'पाखण्ड' शब्द की व्याख्या करते हुए 'संस्कृत-पदार्थ-कौस्तुभ' में लिखा है कि "वेद-विरुद्ध आचारः पा त्रयीधर्मः तं खण्डयति।" दिखावटी उपासना या भक्ति, पूजा पाठ आदि का आडम्बर। ढकोसला ढोंग, वञ्चना, छल। (वि) जो वेद के विरुद्ध आचार करे।

पालनाच्च त्रयी धर्मः, 'पा' शब्देन निगद्यते।
तं खण्डयन्ति ते यस्मात्, पाखंण्डास्तेन हेतुना॥"

मुझको तो अपनी अकिञ्चन मति से पाखण्ड प्रतीत नहीं हुआ। क्योंकि मुझको तो वेद-विरुद्ध शील-विरुद्ध, विज्ञान-विरुद्ध एवं दर्शन-विरुद्ध श्री ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के विचार प्रतीत नहीं हुए।

अब प्रश्न उठता है कि तो ब्रह्मचारी जी का शिर-सञ्चालन क्यों होता है? इसका वास्तविक समाधान तो उच्चकोटि के योगी जन ही कर सकते हैं। सांसारिक राजवैद्य, डाक्टर एवं मनोवैज्ञानिकों के वश का यह विषय नहीं है।

इस अकिञ्चन मति में यह बात नहीं समाती कि जिस व्यक्ति के प्रवचनों में विषय वस्तु की इतनी गम्भीरता हो, युक्ति समन्वय हो, शृंखला-बद्धता हो, स्वर माधुर्य हो और उपयोगिता के साथ आकर्षण हो, वे ऐसा तथा-कथित पाखण्ड

क्यों करें ? क्या उनकी विषय-वस्तु की गम्भीरता और उपर्युक्त गुणों के मेल नहीं पुजवा देंगे ? जब कि जिन उपदेशकों के प्रवचनों में इन गुणों की जितनी मात्रा में अधिकता होती है उनकी उतनी ही मात्रा में प्रतिष्ठा होती है। ऐसी दशा में श्री ह्मचारी जी महाराज ऐसा प्रयास क्यों करते ?

विद्वदनुचर—

ज्ञानेश्वर शास्त्री

नई दिल्ली

—:(-०-):—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभान्तर्गत धर्मार्य सभा के सदस्य विद्वद्वर्य्य श्री पं० भीमसेन जी शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल० की सम्मति--

प्रशस्य चरित ब्रह्मचारी जी लोक विलक्षण पुरुष हैं, साधारण अवस्था में प्रायः निरक्षर भट्टाचार्य हैं, पर प्रवचन काल में अपूर्व वेदवक्ता, स्पृहणीय ईश्वर भक्ति तथा वेद भक्ति की मूर्ति हैं उनकी निस्पृहता, निरभिमानता आदि सभी विचारशीलों को अत्यन्त प्रभावित करती है। दम्भ आदि का उनमें सन्देह करना क्षिप्रकारिता का परिचायक है। आर्य समाज तथा सनातन धर्म सभा आदि में जिन विषयों में मतभेद है यथा अवतारवाद, मूर्त्तिपूजा, मुक्ति से पुनरावृत्ति आदि सब में वे वैदिक

सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। इतर मतों का असन्दिग्ध शब्दों में निराकरण करते हैं। कहना चाहिए कि वे वैदिक धर्म के निर्वतन दृढ़ प्रचारक हैं। मुझे उनके पांच व्याख्यान ही सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, पर उनके प्रत्येक व्याख्यान से मुझे परम संतोष हुआ है और किसी विषय में मेरी जानकारी भी बढ़ी है।

मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना। आर्य समाज के अनेक महान् पुरुष उनके व्याख्यानों से हानि समझते हैं। मेरी प्रार्थना है कि वे अधिक गम्भीर और सहानुभूति से इस विषय पर पुनर्विचार करें। केवल त्रुटियों पर ध्यान देना और गुणों पर ध्यान न देना भी तो औचित्य का परित्याग ही है। उनकी अवस्था-द्वयी की समुचित व्याख्या तो कोई उच्च कोटि के योगी ही कर सकते हैं। यह मान लेना कि मैं संसार की प्रत्येक बात पर उचित निर्णय कर सकता हूँ, साहस मात्र है।

पौराणिकों की प्रत्येक मान्यता का यह वन्दनीय पुरुष पूरा-पूरा खण्डन करता है अतः यह कहना कि कोई सनातन धर्मी आदि उसका आदर नहीं करता, परिस्थिति का अयथार्थ चित्रण मात्र है। वे अपने प्रत्याख्याता का तीन काल में भी आदर नहीं कर सकते, फिर उसका जन्मना ब्राह्मण न होना भी सनातन धर्मियों के द्वेष का अपार हेतु है।

उनके अतिश्रद्धा पूर्वक गीयमान मंत्र हमारी मूल संहिताओं में अनुपलब्ध हैं। किसी वर्त्तमान शाखा में भी उपलब्ध नहीं हैं। वे आंगरिस संहिता के मन्त्र बोलते हैं, जब तक वह संहिता

उपलब्ध न हो तब तक उनके विरुद्ध निर्णय नहीं दिया जा सकता। यह तो हर्ष की बात है कि इनके द्वारा एक लुप्त शाखा के मन्त्रों का परिचय मिल रहा है। निःसन्देह उनके पाठ विज्ञान मन्त्र सदृश ही है। संस्कृत श्लोकों से उनका कोई साम्य नहीं।

उनकी भाषा में प्रायः ब्रजभाषा की पुट होती है अतः वर्तमान परिष्कृत हिन्दी की दृष्टि से उसमें दोषान्वेषण अक्षम्य है। ब्रह्मचारी जी की दैनिक परिचर्या भी अति सात्विक है। अप्रबुद्ध दशा में भी यज्ञों के परम श्रद्धालु हैं। लहसुन, प्याज, तो दूर रहा, मरीचि, लवण रहित भोचन के भक्त हैं। भोजन एक समय ही करते है। गोदुग्ध पसन्द करते हैं, महिष दुग्ध में प्रबल अरुचि है।

वर्तमान ऐतिहासिक सामग्री से यदि किसी विषय में उनका कथन भिन्न हो तो हमें इतिहास के एक दूसरे पक्ष का ज्ञान हो जाता है और इसमें वैदिक सिद्धान्तों से विरोध की क्या बात है।



पूज्यपाद ब्रह्मर्षि योगेश्वरानन्द जी महाराज, (भूतपूर्व) बाल ब्रह्मचारी श्री व्यासदेव जी महाराज ने १४-४-६२ को योग निकेतन स्वर्गाश्रम में ब्र० जी के दो प्रवचनों को सुनने के पश्चात् निम्न सम्मति दी—जो संक्षेप में यहाँ दे रहे हैं, जिसका टेप प्रवचन अनुसन्धान समिति के पास है।

"ब्र० कृष्णदत्त जी से हमारी हिन्दू व आर्य जाति को बड़ा गौरव है, ऐसी महान् आत्माएं हमारे देश में इस युग में भी होने लगी हैं। इनके व्याख्यान विद्वत्तापूर्ण हैं, ब्र० कृष्णदत्त जी वास्तव में वेद का सुन्दर प्रतिपादन करते हैं इनका उपक्रम तथा उपसंहार विद्वानों की तरह होता है—अब रही योग की दृष्टि, यदि ब्रह्मचारी जी को मेरे पास कुछ काल, कुछ दिन, (महीनों नहीं) रहने का अवसर मिले तो ठीक निर्णय दे सकूंगा कि योग के साथ इसका क्या सम्बन्ध है। यह जिस प्रकार समाहित होकर अपने ज्ञान का प्रसार करते हैं, यह हमारे जैसे योगियों के लिए बड़ा गौरव है क्योंकि समाधि के आधार पर चित्त की एकाग्रता पर नेत्र बन्द करके यह अपने विज्ञान का प्रवचन करते हैं यह बड़े सौभाग्य की बात है और हमारे आर्य धर्म का प्रचार है, हमारी पुरानी संस्कृति का प्रसार है हमें इस बात का बड़ा गौरव है।"



मैंने ब्रह्मचारी श्री कृष्णदत्त जी के सुषुप्ति अवस्था में दिये २, ३ प्रवचन सुने, मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं, कि ब्रह्मचारी जी वैदिक काल के कोई योग भ्रष्ट 'आत्मा' हैं, उनका ज्ञान नितान्त गम्भीर, पूर्ण वैदिक और निर्भ्रान्त है। दम्भ, छल, आडम्बर से रहित है, अनुसन्धान का विषय है, योगियों के लिए भी दुरूह है, विद्वानों के लिए अगम्य है, सच-

मुच इस युग की 'अध्यात्मिक विभूति' है, यह वह अनिर्वचनीय आश्चर्य है जिसे लाखों वर्षों के इतिहास ने नहीं देखा, अनुभव तक नहीं किया, हमारा सौभाग्य है, कि हम उन्हें साक्षात् देख रहे हैं, सुन रहे हैं।

बृहद्बल शास्त्री एम० ए०



मुझे श्री ब्रह्मचारी जी के दो बार सुषुप्ति अवस्था में आध्यात्मिक प्रवचन सुनने का अवसर प्राप्त हुआ है ! प्रवचनों से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ हूं। ऐसा मालूम होता था कि जैसे कोई ऋषि अपने शिष्य को युक्तियुक्त वेदानुकूल उपदेश दे रहा हो। मुझे उसमें कोई अवैदिकता प्रतीत नहीं हुई।

मैं समझता हूं कि आर्य भाइयों का यह गौरव है कि मध्य में ही एक निरक्षर देहधारी के शरीर में किसी ऋषि का आत्मा प्रवेश करके उपदेश करता है। उस समय यही प्रतीत होता है कि ब्रह्मचारी जी की आत्मा किसी कर्मफल भोगने के लिए इस शरीर में आई है।

आचार्य सत्यभूषण
अधिष्ठाता
वैदिक भक्ति साधना आश्रम
रोहतक



नम्र निवेदन

(१) ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के प्रवचन सम्बन्धी विषय एवं अन्य वेद विषयक अनुसन्धान कार्य के लिये वैदिक अनुसन्धान समिति का संगठन किया गया है। इस कार्य में सहयोग देने के लिए भारत भर के आस्तिक जन सदस्य बन कर पुण्य के भागी बनें।

(२) आस्तिकता का प्रचार एवं जन साधारण की यज्ञों में रुचि उत्पन्न करना भी समिति का लक्ष्य है। समिति के प्रबन्ध से प्रतिवर्ष एक विशाल महा यज्ञ का आयोजन होता है।

(३) ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के प्रवचनों का प्रबन्ध जो
या सज्जन अपने यहां कराना चाहें वह समि
से पत्र व्यवहार करें।

(४) ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के प्रवचनों की
पुस्तकें भी प्राप्त हो सकती हैं जि
सम्मति तथा ब्रह्मचारी जी
भी है।

(५) इच्छुक सज्जन शीघ्र
प्रति पुस्तक १) डा
डाक व्यय से
रियायत

ल्ली

ओ३म्

ब्र० कृष्णदत्त जी के सम्बन्ध में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभान्तर्गत धर्मार्य सभा के प्रधान गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक, विद्यावाचस्पति श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड की

शुभ सम्मति

मैंने ब्र० कृष्णदत्त जी के ११ से १५ जून तक ५ प्रवचन लोधी कालोनी और विनयनगर में सुने। इनसे पूर्व भी एक प्रवचन वर्ण व्यवस्था पर विनय नगर में सुना था। इन प्रवचनों में अद्वैतवाद, मूर्ति-पूजा, भूत-प्रेत, जन्म से वर्ण-व्यवस्थादि का निराकरण करते हुए आर्य वैदिक सिद्धान्तों का प्रबल समर्थन देख कर मुझे प्रसन्नता हुई।

ब्र० कृष्णदत्त जी के उस विशेष अवस्था में दिये प्रवचनों को लोग ध्यान से और श्रद्धापूर्वक सुनते रहे हैं। यह हर्ष की बात है, इससे वैदिक धर्म के प्रचार में सहायता मिलेगी।

मेरे विचार में यह नहीं माना जा सकता कि इनको किसी ने रटवा रखा है अथवा यह सब केवल पाखण्ड है। यद्यपि ऐसा कैसे होता है कि एक अशिक्षित-प्रायः व्यक्ति ऐसे उत्तम, प्रभावशाली प्रवचन विशेष अवस्था में कर सके, यह मनोविज्ञान तथा योग की दृष्टि से विचारणीय बात है, जिस पर पूर्ण अनुसन्धान जारी है, तथापि उच्चारण आदि की कुछ त्रुटियों को छोड़ कर यह प्रवचन मुझे अति उपयोगी प्रतीत हुए हैं, जिन[illegible] वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि होती है। शेष विषयों पर अनुसंधा[illegible] उपेक्षित है।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड